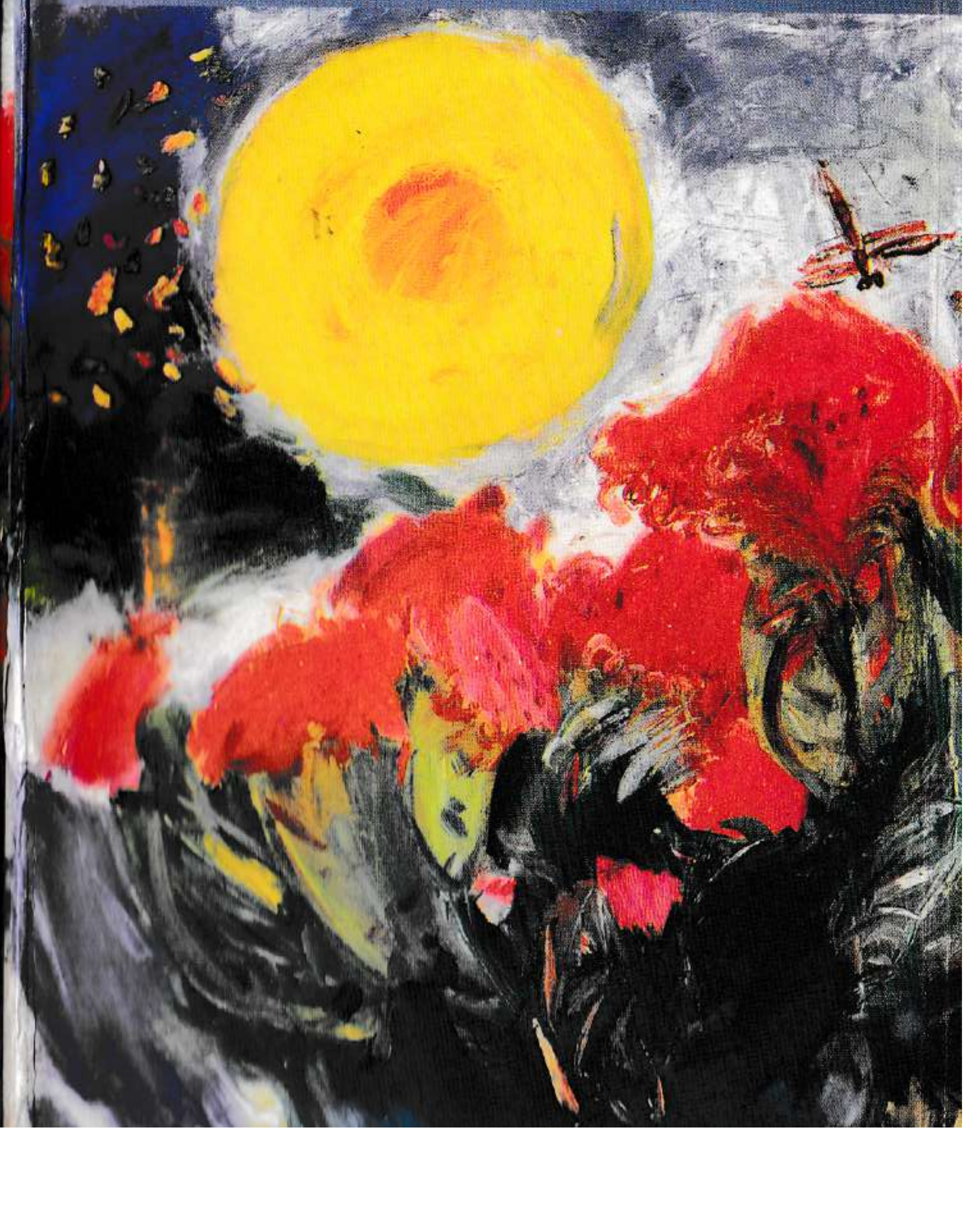


परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

ISBN:81-87425-59-8
मूल्य: रु. 40.00

अनजान फूल

आन्द्रेई प्लातोनोव



अनजान फूल

आन्द्रेई प्लातोनोव की कहानियाँ

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

अनुवादक : योगेन्द्र नागपाल

ISBN: 81-87425-59-8

मूल्य : रु. 40.00

प्रथम संस्करण : जनवरी 2006

परिकल्पना प्रकाशन
द्वारा, जनचेतना, डी-68, निरालानगर,
लखनऊ—226 020 द्वारा प्रकाशित

क्रिएटिव प्रिन्टर्स 628/एस-8, शक्तिनगर, लखनऊ द्वारा मुद्रित

आवरण : रामबाबू

ANJAAN PHOOL *by* **Andrai Platonov**

संकलन के बारे में

आन्द्रेई प्लातोनोव (1899-1951) सोवियत यथार्थवादी लेखकों में शैली और शिल्प की दृष्टि से अनन्य माने जाते रहे हैं। अर्नेस्ट हेमिंग्वे उन्हें अपना गुरु मानते थे। मक्सिम गोर्की उनकी प्रतिभा का अत्यन्त ऊँचा मूल्याँकन करते थे।

प्लातोनोव का जन्म वोरोनेझ के एक ग़रीब परिवार में हुआ था। वह सोवियत लेखकों की उस पीढ़ी के सदस्य थे जिन्होंने अक्टूबर क्रान्ति के साथ साहित्य में पदार्पण किया। वह गृहयुद्ध के मोर्चों पर लाल सेना के सैनिक के रूप में लड़े, फिर शिक्षा पायी, इंजीनियर बने तथा दलदल सुखाने, नहरें बनाने और बिजलीघर के निर्माण के कामों में लग गये। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नात्सी हमलावरों से लोहा लेने के लिए उन्होंने एक बार फिर सैनिक वर्दी पहनी।

एक लेखक के रूप में वे उसी समय प्रसिद्ध हो चुके थे जब 1927 में उनका पहला कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ। 1928 में उनके दो कहानी-संग्रह निकले, लेकिन फिर उनकी व्यंग्य कथाओं के प्रकाशन के बाद उन्हें कटु आलोचनाओं का शिकार भी होना पडा। काफ़ी हद तक इसके लिए उस समय साहित्य-कला के क्षेत्र में व्याप्त यांत्रिकता व अतिसरलीकरण के भटकाव और नौकरशाही के प्रभाव का भी हाथ था। इसके बाद लिखी गयी उनकी अधिकांश रचनाएँ उनके जीवन-काल में प्रकाशित नहीं हो सकीं।

प्रसिद्ध सोवियत कवि येव्गेनी येव्तुशेंको ने प्लातोनोव के बारे में लिखा था : "संवेदना की प्रतिभा... महान लेखकों की पहचान है। आन्द्रेई प्लातोनोव इसी कोटि के लेखक थे, जिन्होंने ठण्ड से अकड़ी चिड़िया में निःस्पन्द होती मानवता को देखा।" प्लातोनोव मनोवैज्ञानिक गद्य के महारथी माने जाते हैं, उनकी अनूठी शैली विश्व साहित्य में बेजोड़ मानी जाती है।

इस संकलन में हमने उनकी उन चुनी हुई कहानियों को शामिल किया है जो उनकी विशिष्ट दृष्टि और मौलिक शैली का प्रतिनिधित्व करती हैं।

—कात्यायनी

अनुक्रम

रेत की मास्टरनी

1

बीस वर्षीया मरीया नरीश्किना अस्त्राखान प्रान्त के रेतीले मैदानों में खोये एक कस्बे की रहनेवाली थी। इस सुडौल, हृष्ट-पुष्ट युवती की बाँहों-टाँगों में पुरुषसुलभ शक्ति थी।

मरीया नरीश्किना की यह दौलत उसके माँ-बाप की ही देन नहीं थी, बल्कि इस बात का भी नतीजा थी कि लड़ाई और क्रान्ति—दोनों से ही वह प्रायः अछूती रही थी। रेतीले मैदानों में खोयी उसकी जन्मभूमि लाल और श्वेत सेनाओं के अभियान मार्गों से दूर थी, और उसकी चेतना उस काल में प्रस्फुटित हुई, जब समाजवाद दृढ़ीभूत हो चुका था।

स्कूल मास्टर पिता बेटी के बचपन का ख़्याल रखते हुए उसे देश की घटनाएँ नहीं समझाते थे, इस डर से कि कहीं कोमल बाल-हृदय पर सारी उम्र के लिए गहरे घाव न पड़ जायें।

मरीया कास्पियन सागर के तटवर्ती रेतीले मैदानों को देखा करती, जिनमें हवा के हल्के-से झोंके से ही रेत का धुआँ-सा उठने लगता, फारस को जाते ऊँटों के काफिलों और धूप से सँवलाये सौदागरों को वह देखती, जो दिन-रात रेत में फाँकने के कारण फटी-फटी आवाज में बोलते थे। घर पर वह आनन्द में डूबी पिता की भूगोल की पुस्तकें पढ़ा करती। रेगिस्तान उसका वतन था और भूगोल उसकी कविता।

सोलह बरस की हुई तो पिता ने उसे अस्त्राखान ले जाकर वहाँ अध्यापन शिक्षा संस्थान में दाखिल करवा दिया, जहाँ उसके पिता को लोग जानते थे और उनकी क़द्र करते थे। सो, मरीया छात्रा बन गयी।

चार साल बीत गये—इंसान के जीवन में सबसे अकथनीय साल, जब युवा वक्ष में कोंपलें फूटती हैं और नारीत्व खिलता है, चेतना जागती है और जीवन का विचार जन्म लेता है। अजीब बात है कि इस उम्र में कोई भी कभी भी युवा हृदय में उठ रही चिन्ताओं-शंकाओं का समाधान ढूँढ़ने में मदद नहीं करता; कोई भी उस नाजुक तने को आसरे नहीं देता, जो सन्देहों की हवाओं के थपेड़े और वृद्धि के भूकम्प झेलता है। एक न एक दिन ऐसा आयेगा जब यौवन निस्सहाय नहीं रहेगा।

हाँ, मरीया को प्यार भी हुआ और प्राणों की डोर तोड़ डालने को उसका जी बेताब भी हुआ—हर उदीयमान जीवन इस कटु जल से सिंचता है।

पर सब कुछ बीत गया। पढ़ाई खत्म हो गयी। लड़कियों को हॉल में जमा किया गया, प्रान्तीय शिक्षा विभाग का प्रधान आया और इन अधीर जानों को उनके भावी धैर्यपूर्ण कार्य का अपार महत्व समझाने लगा। लड़कियाँ उसकी बातें सुन रही थी और मुस्करा रही थीं—भाषण के शब्द अस्पष्ट-से ही उनकी चेतना में उतर रहे थे। उनकी उम्र में इंसान के अन्तस में कोलाहल होता है, बाहर की दुनिया बहुत विकृत हो जाती है, क्योंकि वह चमकती आँखों से उसे देखता है।

मरीया नरीश्किना को मध्य एशिया के निष्प्राण रेगिस्तान की सीमा पर बसे छोटे-से गाँव खोशुतोवो में मास्टरनी का काम दिया गया।

2

खोशुतोवो के रास्ते में जब मरीया ने अपने को निर्जन रेगिस्तान से घिरा पाया तो गहरी उदासी उस पर उतर आयी।

जुलाई की शान्त दुपहरी में उसने मरुभूमि का भूदृश्य अपनी आँखों के आगे फैला देखा।

भयानक आकाश की ऊँचाई में सूरज आग बरसा रहा था, तपे बालूई टीले—बरखान—दूर से दहकते अलाव लगते थे, जिनके बीच लोनी ज़मीन का सफ़ेद कफ़न फैला हुआ था। अचानक ही आँधी उठती और पीली-पीली घनी धूल में सूरज छिप जाता, फुफकारती हवा विलापती रेत को उड़ाती ले जाती। हवा जितनी तेज हो जाती टीलों के शिखरों से रेत का उतना ही घना धुआँ उठता, हवा में रेत भर जाती और वह अपारदर्शी हो जाती। निरभ्र आकाश में यह पता न चलता कि सूरज कहाँ है और चौंधियाता दिन अचानक अमावस की रात में बदल जाता।

मरीया पहली बार रेगिस्तान में असली आँधी देख रही थी।

शाम होते-होते आँधी गुजर गयी। रेगिस्तान फिर अपने पुराने रूप में आ गयाः शिखरों पर हल्का धुआँ छोड़ते बरखानों का निस्सीम सागर, क्लान्तिकर शुष्क विस्तार, जिसके पार मन जीवन के कोलाहल से गूँजती नम, युवा, अथक धरती की कल्पना करता।

तीसरे दिन शाम को मरीया नरीश्किना खोशुतोवो पहुँची।

उसने कुछेक दर्जन घरों की बस्ती, स्कूल की पक्की इमारत और गहरे कुओं के पास लाल बेद के विरले झाड़ देखे। उसके वतन में कुएँ सबसे कीमती चीज़ें थे, उनसे रेगिस्तान में ज़िन्दगी रिसती थी। इन कुओं को खोदने और फिर उन्हें बनाये रखने के लिए बड़ी मेहनत और अक़्ल की ज़रूरत थी।

खोशुतोवो प्रायः पूरी तरह रेत में डूबा हुआ था। गलियों में महीनतम सफ़ेद रेत

के, जो पामीर के पठारों से उड़ आयी थी, ढेर लगे हुए थे। घरों की खिड़कियों तक रेत पहुँची हुई थी, अहातों में उसकी ढेरियाँ लगी हुई थीं, वह लोगों की साँसों को रेतती थी। हर जगह बेलचे रखे हुए थे और रोज़ाना किसान रेत की क़ैद से घरों को छुड़ाने के लिए काम करते थे।

मरीया ने कठोर और प्रायः अनावश्यक परिश्रम देखा—जो जगहें साफ़ की जाती थीं, उन पर फिर से रेत उड़ आती थी—खामोश ग़रीबी और बेबस हताशा देखी। भूखे, थके किसान ने कितनी ही बार अपना पूरा ज़ोर लगाकर काम किया था, लेकिन रेगिस्तान की ताक़त के सामने उसकी एक न चली थी और वह हिम्मत हार बैठा था, अब या तो किसी की चमत्कारी सहायता की उसे उम्मीद थी, या फिर उत्तर की नम ज़मीनों पर बसाये जाने की।

मरीया नरीश्किना स्कूल में ही एक कमरे में रहने लगी। खामोशी और एकान्त से सठियाया बूढ़ा चौकीदार उसे देखकर यों खुश हो उठा मानो उसकी सगी बेटी लौट आयी हो, और वह अपनी सेहत की परवाह किये बिना उसे बसाने में लग गया।

3

जैसे-तैसे स्कूल को ठीक-ठाक करके, जिला केन्द्र से ज़रूरी सामान मँगवाकर मरीया नरीश्किना ने दो महीने बाद पढ़ाई शुरू की।

बच्चे स्कूल आने लगे पर कभी पाँच आते, तो कभी सारे बीस के बीस।

जल्दी ही जाड़ा आ धमका। इस रेगिस्तान में जाड़ा भी उतना ही दुष्टता भरा था, जितनी ग्रीष्म ऋतु। भयानक बर्फ़ीली आँधियाँ सीत्कार करती चलने लगीं। हिम के साथ रेत भी उड़ती और डंक की तरह चुभती। गाँव में पूरा सन्नाटा छा गया। किसान कंगाली के ग़म में डूब गये।

बच्चों के पास न पाँवों में पहनने को कुछ था, न तन ढँकने को। अक्सर स्कूल बिल्कुल ही खाली रहता। गाँव में अनाज खत्म हो रहा था, मरीया की नज़रों के सामने बच्चे दुबला रहे थे, किस्से-कहानियों में दिलचस्पी खो रहे थे।

नये साल तक बीस बच्चों में दो मर गये और उन्हें कच्ची, बालूई क़ब्रों में दफ़ना दिया गया।

हँसमुख, साहसी, अडिग मरीया का मन इस किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में बुझने लगा।

लम्बी शामों और रीते दिनों के पूरे युग बीत रहे थे, मरीया बैठी यही सोचती रहती थी कि इस दम तोड़ते गाँव में वह करे तो क्या करे। इतना तो साफ़ था कि भूखे और बीमार बच्चों को नहीं पढ़ाया जा सकता।

किसान स्कूल की ओर से उदासीन थे। उनकी जो हालत थी उसमें उन्हें स्कूल की कोई ज़रूरत नहीं थी। इस कमबख़्त रेत पर पान पाने में जो उनकी मदद करेगा उसके पीछे वे कहीं भी चले जायेंगे, मगर स्कूल को किसानों के इस काम से कोई वास्ता नहीं था।

आख़िर मारीया नरीश्किना को रास्ता सूझ गया : रेत से जूझना ही स्कूल में प्रमुख विषय होना चाहिये, रेगिस्तान को सजीव धरती बनाना सिखाना चाहिये।

तब उसने किसानों को स्कूल में बुलाया और अपने इरादे के बारे में बताया। किसानों को उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ मगर उन्होंने कहा : काम तो यह अच्छा है।

मरीया ने जिला शिक्षा विभाग के नाम लम्बी अर्जी लिखी, किसानों से दस्तख़त करवाये और जिला-केन्द्र चल दी।

शिक्षा विभाग में सहानुभूतिपूर्वक उसकी बात सुनी गयी, कुछ बातों से वे सहमत नहीं थे। रेत विद्या का कोई विशेष अध्यापक उसे नहीं दिया गया, हाँ किताबें दे दीं और सलाह दी कि रेत का काम खुद ही सिखाये। कोई मदद चाहिये हो तो अपने इलाके के कृषि विशेषज्ञ से मिले।

मरीया नरीश्किना मुस्करा दी : कृषि विशेषज्ञ सौ मील दूर रहता था, खोशुतोवो कभी नहीं आया था।

जवाब में अधिकारी भी मुस्कराये और यह जताते हुए कि बातचीत ख़त्म हो गयी उससे हाथ मिलाने लगे।

4

दो साल बीत गये। बड़ी मुश्किल से पहली गर्मियों के अन्त में मरीया किसानों को इस बात के लिए राजी कर पायी कि उन्हें हर साल श्रमदान करना होगा—एक महीना वसन्त में और एक महीना जाड़ों से पहले, पतझड़ में।

साल भर बाद ही खोशुतोवो को पहचानना मुश्किल था। सिंचित क्यारियों के चारों ओर लाल बेद की हरी रक्षा पट्टियों लहलहा रही थी, रेगिस्तानी हवाओं की दिशा में लम्बी पट्टियों ने खोशुतोवो को घेर लिया और उसके मनहूस दिखनेवाले घरों पर रौनक आ गयी।

स्कूल के पास मरीया नरीश्किना ने चीड़ की पौध उगाने के लिए नर्सरी बनाने की सोची ताकि रेगिस्तान का पूरी तरह मुक़ाबला किया जा सके।

गाँव में उसके बहुत-से मित्र बन गये थे। दो ज़ने-निकीता गाव्किन और येर्मोलाइ कोबोज़ेव तो इस नयी आस्था के पैगम्बर ही थे।

मरीया ने किताबों में पढ़ा कि चीड़ की क़तारों के बीच बोयी गयी फ़सलें दुगनी, तिगुनी पैदावार देती हैं, क्योंकि यह पेड़ हिम की नमी को बचाये रखता है और पौधों को गरम हवा से झुलसने से बचाता है। लाल बेद की झाड़ियों से ही चारे की घास की फसल बहुत बढ़ गयी थी, चीड़ तो कहीं ज़्यादा मज़बूत पेड़ है।

खोशुतोवो में सदा ही ईंधन की कमी रही थी। धुआँ छोड़ती मेंगनियाँ और गोबर के उपले ही जलाये जाते थे। अब लोगों को बेद की लकड़ी जलाने को मिली। किसानों की कोई अतिरिक्त आमदनी नहीं थी, आधा साल उन्हें हाथ पर हाथ धरे बैठना पड़ता था। अब इस बेद से ही उन्हें बेंत मिली, जिससे उन्होंने टोकरियाँ बुननी सीख लीं, जिनके हाथ में हुनर था वे तो कुर्सियाँ, मेंजें और दूसरी चीज़ें भी बनाने लगे। इससे पहले जाड़े में ही दो हज़ार की कमाई हुई।

खोशुतोवो के निवासियों को ग़रीबी से कुछ राहत मिली, चैन मिला। रेगिस्तान में धीरे-धीरे हरियाली और रौनक आ रही थी।

मरीया नरीश्किना का स्कूल हमेशा भरा रहता था। बच्चे ही नहीं बड़े भी वहाँ जमा होते थे और रेतीले मैदान में जीने की सूझ-बूझ की बातें सुनते थे, जो मास्टरनी पढ़कर सुनाती थी।

मरीया काम की दौड़-धुप के बावजूद गदरा गयी और उसके चेहरे पर जवानी की चमक बढ़ गयी।

5

मरीया को खोशुतोवो में आये तीन साल हो गये थे। अगस्त का महीना था, रेतीले मैदानों में सारी हरियाली सूख चुकी थी, बस चीड़ और लाल बेद के पौधे ही हरे-भरे थे। तभी एक मुसीबत आ पड़ी।

खोशुतोवो के बड़े-बूढ़े जानते थे कि इस साल खानाबदोश अपने रेवड़ लेकर गाँव के पास से गुजरेंगे : रेगिस्तान की अपनी परिक्रमा में वे हर पन्द्रह साल बाद यहाँ से गुजरते थे। इन पन्द्रह सालों तक खोशुतोवो के मैदान परते पड़े रहे थे, खानाबदोशों की परिक्रमा पूरी हो रही थी, वे यहाँ आयेंगे और वह सब बटोर लेंगे जो धरती आराम पाकर उगा पायी थी।

वे वसन्त के आस-पास आया करते थे, लेकिन इस बार पता नहीं क्यों उनके आने में देर हो रही थी।

''आयेंगे ज़रूर'' बुज़ुर्गों का कहना था। ''और अपने साथ मुसीबत लायेंगे।''

मरीया नरीश्किना को उनकी बातें पूरी तरह समझ में नहीं आती थीं, वह इन्तजार कर रही थी। मैदान कब के वीरान हो चुके थे—वसन्त में आये पंछी उड़ गये थे,

कछुए अपने बिलों में छिप गये थे, जहाँ प्राकृतिक जलाशय थे। 25 अगस्त को गाँव से सबसे दूर लगाये गये बेद के झाड़ों से कुएँवाला दौड़ा-दौड़ा आया और घरों के चक्कर लगाता चिल्लाने लगा :

"ख़ानाबदोश आ गये!"

इस पहर में मैदानों में हवा नहीं चलती थी, लेकिन क्षितिज पर रेत का धुआँ उठ रहा था : खानाबदोशों के हज़ारों घोड़े और रेवड़ बढ़ते आ रहे थे।

तीन दिन बाद न लाल बेदों का कुछ बचा, न चीड़ के पेड़ों का। खानाबदोशों के घोड़े और मवेशी सब कुछ चर गये, सब कुछ रौंद डाला उन्होंने। कुओं में पानी भी नहीं रहा : रात को खानाबदोश मवेशियों को गाँव के कुओं पर हाँक लाते थे और सारा पानी निकाल लेते थे।

खोशुतोवो में मुर्दानगी छा गयी, किसान मुँह सीकर एक दूसरे से सट रहे थे।

अपने जीवन के इस पहले, सच्चे दुख से मरीया व्याकुल हो उठी और जवान क्रोध से उफनती खानाबदोशों के सरदार से मिलने चल दी।

सरदार ने चुपचाप, विनम्रता से उसकी सारी बात सुनी और फिर बोला :

"क्या किया जाये, बीबी! घास कम है, लोग और डंगर ज़्यादा है। अगर खोशुतोवो में खानाबदोशों से ज़्यादा लोग होंगे तो वे हमें रेगिस्तान में मरने के लिए खदेड़ देंगे। वे भी अपने ढंग से सच्चे होंगे, जैसे हम सच्चे हैं। हम जालिम नहीं हैं, न ही आप लोग जालिम हैं। किसी न किसी को मरना पड़ता है और वह दूसरों को कोसता है।"

"जो भी हो, आपने नीच काम किया है," मरीया ने कहा। "हमने तीन साल खून पसीना एक किया और आपने तीन दिनों में सारी हरियाली का सफाया कर डाला।... मैं सोवियत सरकार से शिकायत करूँगी, आप पर मुक़दमा चलेगा..."

"बीबी, ये मैदान हमारे हैं। रूसी यहाँ क्यों आये? जो भूखा है और अपने वतन की घास खाता है, वह मुजरिम नहीं है।"

मरीया नरीश्किना ने मन ही मन सोचा कि सरदार बुद्धिमान है, और उसी रात वह लम्बी रिपोर्ट तैयार करके जिला-केन्द्र को चल दी।

जिला शिक्षा विभाग के प्रधान ने उसकी बात सुनी और जवाब दिया :

"जानती हैं, मरीया जी, अब खोशुतोवोवाले आपके बिना ही काम चला लेंगे।"

"क्या मतलब?" मरीया दंग रह गयी। उसे सहसा बुद्धिमान सरदार का ख़्याल आया जिसकी इस प्रधान से कोई तुलना नहीं हो सकती।

"मतलब यह है : वहाँ के लोगों ने रेत से जूझता सीख लिया है। अब जब खानाबदोश चले जायेंगे तो वे फिर से लाल बेद उगाने लगेंगे। आपका अगर सफ़ूता में तबादला कर दें तो? आप जायेंगी वहाँ?"

"क्या बला है यह सफ़ूता?" मरीया नरीश्किना ने पूछा।

"सफ़ूता भी गाँव है," प्रधान ने उत्तर दिया, "पर वहाँ रूसी जाकर नहीं बसे हैं, बल्कि यायावरी छोड़ रहे ख़ानाबदोश बस रहे हैं। साल पर साल उनकी गिनती बढ़ रही है। सफ़ूता के आस-पास के इलाके में रेत पर मिट्टी की पतली परत है, सो रेत उड़ती नहीं, उसके चलते टीले-बरखान नहीं बनते। पर हमें डर है कि लोग ज़मीन रौंद देंगे और सफ़ूता भी खोशुतोवो की तरह रेत से भरने लगेगा, लोग कंगाल हो जायेंगे और फिर से खानाबदोशी करने लगेंगे।"

"पर मेरा इससे क्या लेना-देना है?" मरीया ने पूछा। "मैंने क्या ख़ानाबदोशों को वश में करने का ठेका ले रखा है?"

"मेरी बात सुनिये, मरीया जी," प्रधान ने कहा और उसके सामने खड़ा हो गया। "अगर आप सफ़ूता चली जायें और वहाँ बसे खानाबदोशों को रेत से बचाव करना सिखा दें तो दूसरे खानाबदोश भी सफ़ूता की ओर आकर्षित होंगे, जो वहाँ बस गये हैं, वे अपनी जगह छोड़कर नहीं जायेंगे। अब आप समझ गयीं मेरी बात, मरीया जी?... ऐसा हो गया तो रूसी बसेरों के लगाये पेड़ पौधे कम उजड़ेंगे... अरसे से हम सफ़ूता भेजने के लिए आदमी ढूँढ़ रहे हैं, कोई राजी ही नहीं होती, बड़ी दूर-दराज की जगह है। क्या ख़्याल है आपका, मरीया जी?"

मरीया नरीश्किना सोचने लगी :

"क्या अपनी जवानी इस रेगिस्तान में, जंगली ख़ानाबदोशों के बीच दफ़न करनी होगी और लाल बेद के झुरमुट में मरना होगा, रेगिस्तान के इस अधमरे झाड़ को अपने लिये सबसे अच्छा स्मारक और जीवन का सबसे बड़ा यश मानना होगा?..."

कहाँ है उसका पति और जीवन साथी?

फिर मरीया नरीश्किना को दुबारा से ख़ानाबदोशों का वह बुद्धिमान, शान्तचित्त सरदार याद आया, रेगिस्तान के कबीलों के जटिल और गूढ़ अर्थ भरे जीवन का ख़्याल आया, रेत के बरखानों के बीच फँसी दो जातियों की सारी हताशा वह समझ गयी और सन्तुष्ट स्वर में बोली :

"ठीक है। मैं राजी हूँ... कोशिश करूँगी आपसे फिर मिलने आने की, यही कोई पचास साल बाद, बूढ़ी होकर।... रेत भरे रास्ते से नहीं, जंगल के रास्ते से आऊँगी। अच्छा, खुश रहिये–इन्तज़ार करियेगा।"

आश्चर्यचकित प्रधान उसके पास आया।

"मरीया जी, आप तो स्कूल की नहीं, पूरी जनता की प्रधान हो सकती हैं। मुझे बड़ी खुशी है, मुझे आप पर कुछ तरस आ रहा है और पता नहीं क्यों शर्मिंदा महसूस कर रहा हूँ... पर रेगिस्तान भविष्य की दुनिया है, आप किसी बात से डरिये मत, कोई ऐसी बात नहीं जिससे आपको डर लगे, रेगिस्तान में पेड़ उगेगा तो लोग आपके आभारी होंगे।... आपको सारी खुशियाँ मिलें।"

ज़रीं और जुमाल

1

बहुत पहले रात के वक्त चालीस या उससे भी ज़्यादा घुड़सवार फिरोजे की वादी में नदी के किनारे-किनारे धीमी चाल से चले जा रहे थे। फारस और आज़ाद तुर्कमान के मैदान के बीच फैले इस दर्रे के दोनों ओर खड़े कोपेत दाग के धुँधले पहाड़ उसकी ठण्डक की हिफाजत कर रहे थे। ईरान का यह पुराना रास्ता हज़ारों बरसों से जशन मनाते या रोते-कलपते या बेजान हो गये दिलों को ले जाता आया है। उस रात चौदह लोग घुड़सवार टुकड़ी के साथ-साथ एक रस्से से बँधे पैदल चल रहे थे। पैदलों में नौजवान औरतें और एक लड़की थी। वह रस्से से नहीं बँधी हुई थी और थकावट के मारे पीछे छूटती जाती थी। पैदलों की जान इतनी पस्त हो गयी थी कि उन्हें अपने होने का अहसास तक नहीं रहा था और वे मानो बेदम चले जा रहे थे। मगर चालीस घुड़सवार खुश थे और अपनी खुशी को कलेजे में बड़े ध्यान से समेटे हुए थे, ताकि उसे लेकर अपने वतन में पहुँचे, जो अभी बहुत दूर था—पहाड़ों के पार, रेगिस्तान के अँधेरे में। घोड़ेवाला एक आदमी बेजान था, उसे कुर्दों ने ईरान में मार डाला था और अब वह नीचे झुका, अपने ज़िन्दा बच गये घोड़े की जीन और गर्दन से बँधा चला जा रहा था ताकि उसका कुनबा उसे देखकर रो सके।

आधी रात को वादी में उजाला हो गया—चाँद ने पहाड़ों की चढ़ाई पार कर ली थी। इस चाँदनी ने नदी की कलकल को मानो डुबो दिया। टुकड़ी एक बूढ़े चिनार तले रुकी। आसमान की ओर बढ़ता यह चिनार सदियों से जी रहा था। घुड़सवार घोड़ों से उतरे, घोड़ों को उन्होंने ऊँटों की तरह ज़मीन पर लिटा दिया, बगल में बन्दियों को लिटाया और खुद भी लेट गये। दर्रे के आख़िर में उनका पीछा करते कुर्द आ सकते थे, पास के पहाड़ों पर अभी पहरे की बुर्जियाँ मौजूद थीं।

थोड़ी देर में फारसी बन्दी सो गये, बेहोशी में उनका ग़म डूब गया। बस ज़री ताज नाम की एक छोटी औरत नहीं सो रही थी, उसके दिल के साथ-साथ दिमाग़ भी काम कर रहा था। वह चौदह साल की थी। मन में उठती उदासी से उसका गला रुँध रहा था। वह खोरासान की तरफ़ देख रही थी, जहाँ से उसे उठाकर लाये थे। अपने डाके और रेगिस्तानी ज़िन्दगी की मुसीबतों से थके-माँदे तुर्कमान एक आँख ही मूँद रहे थे ताकि झपकी ले लें और देखते भी रहें; घोड़ों ने अपने थूथन ज़मीन पर फैला रखे थे और पास ही उगती घास को न छूते हुए ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रहे थे।

ज़री ताज उठ खड़ी हुई। रात की हवा फारस की ओर से दर्रे में धीरे-धीरे बह रही थी, फूलों की खुश्बू आ रही थी, दूर कहीं अन्धे पहाड़ों में कोई अकेला पंछी गा रहा था, फिर वह भी चुप हो गया।

ज़री ताज ने बूढ़े चिनार पर नज़र डाली—उसमें से सात बड़े तने निकले हुए थे और एक कमज़ोर डाल : सात भाई, एक बहन। ज़री ताज चिनार की एक जड़ पर बैठ गयी, जो खूनी पंजे की तरह गहराई में चली गयी थी, और उसने यह भी देखा कि ऊपर तने में पत्थर उगे हुए हैं। बाढ़ के दिनों में नदी पहाड़ी पत्थरों से चिनार पर हमले करती रही होगी। लेकिन चिनार ने उन विशाल गोल पत्थरों को अपने दामन में समेट लिया, अपनी छाल में लपेटकर अपना अंग बना लिया और आगे उगता गया। "यह भी मेरे जैसा बन्दी है!" ज़री ताज ने सोचा। "वह पत्थर को समेटे हुए है, वैसे ही जैसे मैं अपना कलेजा, अपना बच्चा समेटे हुए हूँ। मेरा दुख भी मेरा अंग बन जाये ताकि मैं उसे महसूस न करूँ।" ज़रीं ताज रोने लगी। दो महीने पहले उसने कुर्द गड़रिये से बच्चा लिया था, क्योंकि कम से कम एक इंसान से तो उसे प्यार करना चाहिये। उसके पास लेटा तुर्कमान दोनों आँखों से उसे देख रहा था, वह खुश था : अगर लड़की को रोना आता है तो वह बीवी होने की आदी हो जायेगी और तुर्कमानिस्तान में बच्चे जनकर मरेगी।

चाँद काले पहाड़ों के पीछे छिप गया, फिर से सन्नाटा छा गया, हवा परछाई की तरह ज़रीं ताज के चेहरे को छूती बह रही थी। वह ज़मीन पर दूसरों के बीच लेट गयी।

"गुलबदन को बहुत पहले ही अरसार ले गये थे," ज़रीं ताज मन ही मन बुदबुदा रही थी ताकि अपने दुख की तुलना सबसे बड़े कष्ट से करके सान्त्वना पा सके। "फातिमा दरिया में डूब गयी थी, मेरी प्यारी, मेरी सबसे अच्छी खानुम आगा, मैंने सुना है, जफ़रबाइयों के यहाँ रहती है, समुन्दर के किनारे और बच्चे जनती है। क्या मैं उनके पास पहुँच जाऊँगी?!"

ज़रीं ताज सो गयी—उसका मन अपनी उन सहेलियों को याद करके कुछ शान्त हो गया था, जो उसकी ही तरह कभी इस शीतल दर्रे से गुज़री थीं और मरी नहीं थीं।

सुबह घुड़सवार तुर्कमान अपने बन्दियों को लेकर कोपेत दाग पहाड़ों से बाहर निकले; तब आगे फैला बेगाना रेगिस्तान, रेगिस्तान के ऊपर फैला अजीब आसमान और अपने वतन से अलग, दूसरी ही तरह की रोशनी देखकर कुछ कुर्द और ईरानी औरतें मन में घिर आयी गहरी उदासी से रो उठीं। लेकिन ज़रीं ताज नहीं रो रही थी : वह खोरासान के हरे-भरे पहाड़ों में बड़ी हुई थी और अब तुर्कमान मैदान की सूनी रोशनी को, बच्चे की मौत जैसे मनहूस इस रेगिस्तान को देखते हुए उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यहाँ लोग रहते क्यों हैं।

अगली सारी रात और आधा दिन भी तुर्कमान बन्दियों को अपने निष्प्राण रेगिस्तान

में हाँकते रहे। फिर एक गाँव के कच्चे मकान में रात काटी, बन्दी लड़कियों को बगल में लिटाया और फिर से आगे चल दिये। जल्दी ही ज़रीं ताज को अपने मरद और मालिक का पता चल गया–वह तेके क़बीले का तुर्कमान था, उम्र चालीस से ऊपर, नाम अताह बाबा। उसके दाढ़ी थी, उसकी निष्क्लान्त और निरानन्द आँखों में सदा अँधेरा छाया रहता था। अताह बाबा कभी-कभार ज़रीं ताज को अपने पास बुलाता और दूसरों से पीछे छूट जाता ताकि रेत पर उसके साथ जी सके।

नीचे लेटी ज़रीं कान लगाकर यह सुनती कि कैसे रेत अपने आप सरकती है : रेत की भी अपनी विविधता भरी छोटी-सी ज़िन्दगी थी। पास ही अताह बाबा का घोड़ा इन्तज़ार में खड़ा होता ओर दोनों इंसानों को देखता रहता। सम्भोग के दौरान ज़रीं ताज हाथ फैलाकर उनमें रेत भरती और छोड़ती रहती, ऊपर फैली ऊँचाई को देखती और इधर-उधर की बातें सोचती रहती। अताह गम्भीरता से, मानो कोई फर्ज निभाते हुए उसे भोगता, नाहक सताता भी नहीं और न ही आनन्द लेता। "इसके साथ तो जी लूँगी!" ज़रीं ताज चुपचाप सोचती रहती, यह देखते हुए कि यह डरावना नहीं है और न ही दिलचस्प; वह खुद कुछ भी महसूस नहीं करती थी, सिवाय अताह बाबा के भार और उसकी दाढ़ी के।

2

पहाड़ पार करने के बाद बारहवीं रात को घुड़सवार तगान कुएँ के पास पहुँचे। यहाँ तेके क़बीले के कंजीन घराने के कुछ कुनबे रहते थे। अताह बाबा की चार बीवियां नमदे के तम्बू-घर के बाहर खड़ी थीं, उसे देखकर अपनी ख़ुशी उन्होंने चेहरे के हाव-भाव से ही ज़ाहिर की, ज़रीं ताज की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अताह उसे अन्दर ले गया। उसे कुछ खिलाने और घर में सुलाने को कहकर बाहर निकल गया–अपने मारे गये रिश्तेदार को उसके घर पहुँचाने। लाश रास्ते में सड़ गयी थी, घोड़े ने नथुनों में भरती सड़ाँध की वजह से रास्ते में पानी बहुत कम पिया था।

परदेस में हैरान-परेशान ज़रीं ताज घर में ज़मीन पर बैठ गयी। अपने वतन में तो वह छह साल की उम्र से खोरासान के पहाड़ों पर झुरमुटों में सूखी टहनियाँ और लकड़ियाँ बटोरती आयी थी–अपने मालिक के लिये, जिसके यहाँ वह रहती थी और दिन में दो बार खाना पाती थी। वहाँ की ज़िन्दगी की वह आदी थी, जवी कोई याद, कोई निशानी छोड़े बिना गुजर रही थी, क्योंकि आये दिन की एक ही जैसी मेहनत कोई ख़ुशी नहीं देती थी और हृदय इस भावशून्यता का आदी हो गया था। सबसे अच्छा वक़्त वह है, जो जल्दी बीत जाता है, जिसमें दिन अपनी मुसीबत नहीं छोड़ जाते।

अताह बाबा की एक बूढ़ी बीवी ने ज़रीं ताज से कुर्द जबान में पूछा कि वह

कौन-से घराने की है, किसके घर में पैदा हुई थी।

"मुझे नहीं पता मैं कब पैदा हुई थी," ज़रीं ताज ने जवाब दिया। "मैं बहुत पहले हुई थी।"

उसे सचमुच अपने माँ-बाप की याद नहीं थी और न ही होश सम्भालने की : वह सोचती थी कि सदा ऐसा ही था।

अचानक रोने-कलपने और गुस्से भरी चीखों की आवाज़ें आयीं। तीन दयनीय औरतें नंगे पाँव घर के अन्दर आयीं और ज़रीं के गिर्द उकड़ूँ बैठ गयीं। पहले तो वे उदास आवाज़ में कुछ बोलने लगीं, फिर ज़रीं के पास सरक आयीं और उसके चेहरे और दुबले बदन को नोचने-खरोंचने लगीं। ज़रीं अपनी रक्षा के लिये सिमटकर गठरी बन गयी, पर मन ही मन वह देख रही थी कि औरतों का गुस्सा बेदम है, सो डरे बिना दर्द सह रही थी। अताह बाबा लौट आया। थोड़ी देर चुपचाप खड़ा रहा, फिर बोला : "बहुत हो गया, वह जवान है, तुम तो मरियल बुढ़ियाँ हो," और उसने परायी औरतों को भगा दिया।

वे चली गयीं और बाहर जाकर फिर से अपने मरद का स्यापा करने लगीं।

रात को अताह बाबा बन्दिनी के बगल में लेटा। जब सब सो गये और रेगिस्तान गुजरी दुनिया की तरह उनके सिरहाने नमदे के तम्बू के पीछे सिमट गया, मालिक ने ज़रीं की देह हो, जो अभाव और सफर से सूख गयी थी, बाँहों में भरा। ज़रीं ताज लेटी-लेटी सोच रही थी कि मरद औरत पर थोपा एक और काम है, और उसे झेल रही थी। पर जब अताह बाबा का वासना का बुख़ार तेज हो गया तो उसकी दो दूसरी बीवियाँ हिलने-डुलने लगीं और घुटनों के बल खड़ी हो गयीं। पहले तो वे जोश से कुछ फुसफुसाती रहीं, फिर ख़ाविन्द से बोलीं :

"अताह! अताह! इस पर तरस मत खा, निकाल इसकी चीख़!"

"याद है, हमारे साथ कैसे हुआ था, इसे दुलार क्यों रहा है?"

"बिगाड़ दे इसे ताकि तुझे याद रखे!"

"देख तो, कैसा चालाक है!"

ज़रीं ताज ने उनकी बात आख़िर तक नहीं सुनी, वह थकावट और उदासीनता के मारे सम्भोग के बीच में सो गयी।

3

ज़रीं ताज ख़ानाबदोश की ज़िन्दगी जीने लगी। वह ऊँटनियों और बकरियों को दोहती थी, भेड़ें गिनती थी और तकीर* पर कुएँ से दिन में सौ-दो सौ मशकें पानी

* तकीर (तुर्की शब्द)–रेगिस्तान में चिकनी मिट्टी के छोटे-बड़े रक़बे।–अनु.

निकालती थी। उसने फिर कभी पंछी नहीं देखे और भूल गयी कि पेड़ों की पत्तियों में हवा कैसे शोर करती है। लेकिन जवानी का वक़्त धीरे-धीरे गुजरता है : ज़रीं की देह में बहुत दिनों तक ज़िन्दगी की आग सुलगती रही, मानो सुख का झोंका पाकर लौ जल उठने को तत्पर हो।

जब भेड़ें सूखने या घास के अभाव में मरने लगतीं तो अताह बाबा तम्बू उखाड़ने, घर की चीज़ों की गाँठें बाँधने और निर्जन इलाके में आगे बढ़ने का हुक्म देता, जहाँ ज़मीन ज़्यादा ताजी होती और विरली घास अभी अछूती होती। सारा कुनबा बसी-बसायी जगह छोड़कर तपा तकीर पार करता, चारों ओर एक समान सूने विस्तार में बढ़ जाता। आगे-आगे कुनबे का बुजुर्ग और सयाने मरद गधों पर चलते; गदहियाँ तह किये तम्बू और बूढ़ी बीवियों को ढोतीं, उनके पीछे भेड़ों के झुण्ड—अस्त-व्यस्त, बौखलाये-से; ज़रीं ताज और दूसरी बन्दियाँ पैदल चलतीं—खाविन्द को पुराने दोस्तों से तोहफे में मिले चाँदी के भारी गहनों और खाने के मटकों से लदी।

ज़रीं ताज को तब खुशी होती जब उन्हें बालुई टीलों पर चलना होता—पाँव रेत की गरमाहट में धँसते। वह देखती कि हवा कैसे किसी बहुत पहले सूख चुके पौधे को छेड़ती और फिर आगे उड़ा ले जाती—उस पौधे को, जो शायद कभी कोपेत-दाग की धुँधली नीली वादियों में या अमू-दरिया के नम तट पर जन्मा होगा। लेकिन अक्सर उन्हें लम्बे-लम्बे तकीर पार करने पड़ते, इस चिकनी, कंगाल ज़मीन पर चलना पड़ता, जहाँ दिन की तपिश रात में भी ठण्डी नहीं पड़ती, जैसे कि गुलाम के दिल में दुख की आग।

नयी जगह हमेशा पुरानी से ज़्यादा मुश्किल होती। कुएँ साफ़ करने होते, चरागाहें देखनी होतीं, दूर-दूर तक यह ढूँढना होता कि कहाँ रेगिस्तानी झाड़ियाँ रेत तले दबी बची हुई है।

वक़्त बीतने के साथ ज़री ताज ज़िन्दगी में सारी दिलचस्पी खोती जा रही थी, स्वयं अपनी भी उसे सुध नहीं रहने लगी थी। जब अताह बाबा पुलाव खाता और बचा-खुचा गोश्त दूसरी बीवियों को मिलता तो ज़री भूख और जलन से तड़पती नहीं। वह हमेशा चुप रहती, सारा वक़्त ढोरों के बीच कुछ करती रहती, अपने दिल को भी महसूस न करती ताकि वह किसी बात के लिये कसमसाये नहीं।

कभी-कभी वह थककर तकीर के बीचोंबीच लेट जाती, वीरानगी और रोशनी उसे घेरे होती। वह चकित मन से प्रकृति को—सूरज और आसमान को देखती। "बस, खत्म!" ज़रीं ताज बुदबुदाती, उसकी सारी ज़िन्दगी का अहसास उसके दिमाग़ में है, उसकी आँखों के सामने आम दुनिया है, बस और कुछ नहीं होगा।

वह हाथों से अपना बदन टटोलती, हड्डियाँ निकल आयी थीं, चमड़ी थकान से सूख गयी थी—उसकी जान धीरे-धीरे देह को छोड़ रही थी : चाँद धीमे-धीमे उगता है, पर तेजी से डूबता है।

कुछ महीने बाद ज़रीं ताज ने छोटी बच्ची को जन्म दिया। अताह बाबा इस बेगानी जान से खुश था, क्योंकि लड़की उसके यहाँ बाँदी बनकर रहेगी, और उसका नाम जुमाल रखने को कहा। ज़री ताज ने बच्ची को छाती से लगाया और समझ गयी कि अभी उसने पूरी ज़िन्दगी नहीं जी है। जाड़ों के दिन थे, बारिश का पानी तकीर से बहकर कुओं में जमा हो रहा था और गदहा ऐसी उदास आवाज़ में रेंक रहा था, जैसे कि सारे जहान में उसका कोई न रहा हो और उसे विरह का रोग लग गया हो। कुछ समय बाद ज़रीं ताज कमज़ोर पड़ गयी, उसकी सेहत जाती रही, वह उठ नहीं पाती थी, बच्ची उसके पास ही लेटी हुई थी और उसकी तपती देह से गरमाहट पाती थी। नमदे के तम्बू में नीचे से हवा आती थी, बेजान तकीर पर बारिश की धारें शोर कर रही थीं।

पर वक़्त बीत रहा था जैसे रेगिस्तान में हवा सनसनाती है और वसन्ती पंछियों को हरियाली भरे नम देशों में ले जाती है। ज़रीं ताज के तपते सिर में एक तस्वीर उभरती : कहीं दूर एक अकेला पेड़ खड़ा है, उसकी टहनी पर नन्ही-सी, बिल्कुल ही छोटी-सी चिड़िया बैठी है और अपने में मगन मन्द स्वर में अपना गीत गा रही है। उसी चिड़िया के पास से ऊँटों के कारवाँ गुजर रहे, घुड़सवार घोड़े दौड़ाते कहीं दूर जा रहे हैं, तूरान को जाती रेलगाड़ी घड़घड़ा रही है, जो ज़रीं ने एक बार बचपन में देखी थी। परन्तु चिड़िया का गीत निरन्तर अधिक सुरीला और शान्त होता जा रहा है, वह तो प्रायः मन ही मन में गा रही है : और कोई यह नहीं कह सकता कि जीवन में किस शक्ति की जीत होगी—चिड़िया की या कारवाओं और घड़घड़ाती गाड़ियों की। ज़रीं ताज जागी और उसने भी सपने में खो गयी इस चिड़िया की तरह जीने का निश्चय किया। वह चंगी हो गयी। लेकिन अताह बाबा बच्ची की ख़ातिर उसकी सम्भाल कर रहा था और उसने अभी कुछ दिन काम करने की मनाही की।

दूसरी बीवियाँ नमदे पर लेटी ज़रीं को कोसते हुए उसे खाना देतीं, कि वह भली-चंगी होकर लेटी पड़ी है और वे बीमार बुढ़ियाँ खप रही हैं।

ज़रीं ताज जल्दी ही खुद ही उठ खड़ी हुई। उसके पास न सोचने को कुछ था, न महसूस करने को, इसलिये लगातार काम में खटना और अपने दिल को क़तरा-क़तरा बुझाना ही आसान था। वह फिर से शान्त हो गयी, जब जुमाल को पीठ पर बांधकर बकरियाँ दोहने लगी, जलाने के लिये लीद जमा करने और कुएँ से पानी निकालने लगी। अगर वह सुखी होती तो भी यही काम किया करती, क्योंकि सुख को बचाये रखने के लिये आम ज़िन्दगी जीनी होती है।

जुमाल बहुत देर तक माँ की पीठ पर लेटी रही, अपने जन्म पर सही वेदना के भय से गठरी बनी और हैरानी से अपने दिल की आवाज़ सुनती हुई—इस इन्तज़ार में कि कब वह थमेगा और सो जायेगा। फिर जुमाल धीरे-धीरे अपने पाँवों पर चलने और अपना अस्तित्व अनुभव करने लगी। लेकिन इसके बाद भी बहुत समय तक

वह माँ से दूर नहीं जाती थी, उसकी झुकी हुई गरम और नम पीठ को, जिस पर वह गरमाती और सोती थी, सहलाती रहती थी। उसे जीना अच्छा लगने लगा, अपने दिल की धड़कन की वह आदी हो गयी और अब उसे यह डर नहीं लगता था कि वह रुक जायेगा।

4

उसका बचपन बहुत लम्बा चला। रोज़ाना आसमान पर सूरज चमकता था, हवा चलती और थमती थी, बालुई टीलों की आड़ में बच्चे खेलते और रोते थे, फिर सूरज बहुत बड़ा, लाल और भारी हो जाता था, दूर कहीं डूब जाता था और हल्का चाँद सूरज की रुपहली परछाईं की तरह सदा काम में लगी बूढ़ी होती माँ के क्लान्त चेहरे पर चमकता था; ऊँटनी को दोहते हुए माँ चाँद की ओर, कंगालों और मृतकों की इस रोशनी की ओर देखती थी, फिर जाकर नमदे पर लेट जाती थी और बेटी से थोड़ा-सा ही दुलार कर पाती थी, क्योंकि नींद उन्हें जल्दी ही जुदा कर देती थी।

वसन्त में ज़रीं ताज ने बेटी को पंछी दिखाये, जो रेत के बहुत ऊपर न जाने कहाँ उड़ते जा रहे थे। पंछी कुछ चिल्ला रहे थे, मानो उन्हें लोगों पर दया आ रही हो। शीघ्र ही वे विलुप्त हो गये।

"वे कौन हैं?" जुमाल ने पूछा।

"वे सुखी हैं," माँ ने कहा, "वे उड़कर पहाड़ों के पार दूर की नदियों पर जा सकते हैं, जहाँ पेड़ों पर पत्तियाँ उगती हैं और सूरज चाँद जैसा शीतल है।"

जुमाल नहीं जानती थी कि यह सब क्या है और उसका दिल नदियों और हरियाली के लिये नहीं टीसता था। वह यहीं बड़ी हुई थी, बालुई टीलों—बरखानों—के बीच, हवा से बने इन टीलों की चोटी से उसने देखा था कि चारों ओर धरती एक जैसी सूनी है। माँ कभी-कभी रोती थी और बेटी को छाती से लगाती थी—वह अब उसके लिये दूर की नदी थी, भूले पहाड़ थी, पेड़ों के फूल थी और तकीर पर छाया थी।

"तू वहाँ, नदी और पहाड़ पर खुश थी?" जुमाल ने पूछा।

"नहीं, मैंने वहाँ दुख सहे," ज़री ताज ने कहा।

"तो फिर क्यों सोचती है, वहाँ अच्छा है?"

"मैं सोचती नहीं, मुझे लगता है," ज़रीं ताज ने जवाब दिया।

नन्ही जुमाल उलझन में पड़ गयी; उसने माँ की उँगली पकड़ ली और उसे सलाह दी :

"तुझे लगता है... तू सिर्फ मुझे प्यार कर, फिर तू सुखी होगी। नदी और पहाड़ नहीं चाहिये।"

किसी जगह से जुदा होते हुए जुमाल हमेशा उदास मन से देर तक उस सबसे विदा लेती, जो पीछे अकेला छूट रहा होता : झाऊ के झाड़ से, जिसके पास वह खेलती थी, काँच के टुकड़े से और दूसरी चीज़ों से, जिनके नाम वह नहीं जानती थी, पर जिन्हें चाहती थी। जुमाल यह सोचकर दुखी होती थी कि लोग नयी जगह चले जायेंगे तो ये सब अकेले उदास होंगे और मर जायेंगे।

5

लम्बा ज़माना बीत गया और जुमाल बारह साल की, भरे-पूरे बदन की, सुन्दर लड़की हो गयी। उसके चेहरे पर रौनक आ गयी, जैसे कि उसके अनजान बाप का ज़रीं ताज के लिये प्यार और चाहत उसके चेहरे पर उभर आये हों। न गुलामी की कंगाली, न ही ज़िन्दगी की नीरसता जुमाल को उजली, बड़ी और निर्मल बनने से रोक पायी। उसका खाना भले ही रूखा-सूखा और देखने में सदा एक जैसा होता था, पर वह सूरज की रोशनी, वसन्ती हवा, वर्षा और ओस के जल और रेत की गरमाहट से बना होता था—इसलिये जुमाल का बदन कोमल था और आँखों में ऐसी चमक थी, जैसे कि उसके भीतर कोई लौ जल रही हो।

वह कहीं नहा नहीं सकती थी, पानी मुश्किल से भेड़ों के लिये पूरा पड़ता था, जब चमड़ी पर चिकनाहट सही न जाती तो वह ऐसी जगह निकल जाती, जहाँ हवा चल रही होती ताकि हवा और रेत उसे अपनी गति से साफ़ करें और ताजगी दें।

एक बार अताह बाबा कुनबों को ऐसी मनहूस जगह ले गया, जहाँ सारा दिन काली चिकनी मिट्टी का रास्ता था, और फिर उसने रुकने को कहा। ऐसा शोचनीय तकीर न जुमाल और न ही ज़रीं ताज ने पहले कभी देखा था। इसलिये शायद मुद्दत से यहाँ कोई नहीं रहा था और तकीर के छोर पर अच्छी घास गरमी और मौत से रेत में छिपी उग रही थी। तकीर के बीचोंबीच निचान थी और वहाँ चिकनी मिट्टी के अँधियारे में जीर्ण-शीर्ण मीनार खड़ी थी। उस मीनार में अताह बाबा ने अपने कुनबे को ठहराया। ज़रीं ताज और दूसरी सारी औरतें मीनार के पास ही बना कुआँ साफ़ करने लगीं। कोई नहीं जानता था कि यह किसकी मीनार है और पुराने जमाने में लोग यहाँ क्या करते थे—खुदा का नाम लेते थे या क़त्ल करते थे।

मीनार की बाहरी दीवार के निचले हिस्से पर आसमानी रंग की टाइलें लगी हुई थीं, जबकि छोटे-से गुम्बद पर गाढ़े नीले रंग की टाइलें थीं और उन पर सुनहरा साँप बना हुआ था।

जुमाल सारी माँओं के साथ कुएँ पर काम कर रही थी। वह गीली रेत ले जाकर दूर डालती और उसमें उसे किसी की हड्डियाँ मिलतीं। रेगिस्तान के छोर पर पहाड़ियाँ

नज़र आ रही थीं, उनके सीने पर बादल सो रहे थे—जाड़ा आने पर ही वे जायेंगे। अताह बाबा ने बताया कि इन पहाड़ियों के पार अमू-दरिया और आलीशान शहर खीवा है। रात को जुमाल मीनार के निचले हिस्से में दीवार के पास लेटी। मीनार की दरारों में बिच्छुओं के चलने की आवाज़ वह सुन रही थी, खुले दरवाजे के पार एक तारे को देख रही थी, जो झुटपुटे में यायावर की तरह भटकता है, और मीनार के पास बहती रेत की एकसुरी आवाज़ को समझ रही थी : ज़िन्दगी के आँसू और सुख उसके दिल के क़रीब थी, मगर जुमाल हौले-हौले, सम्भलकर साँस ले रही थी—ज़िन्दगी के मायने वह नहीं समझती थी।

अताह बाबा नमदे से उठा और अपनी सोती हुई दूसरी बीवियों को लाँघता ज़री ताज की ओर जाने लगा। जुमाल थोड़ी देर देखती रही और फिर उसने माँ को आवाज़ दी ताकि वह अताह से सतर्क हो जाये। लेकिन माँ चुप रही और अताह बाबा ने उसे ढूँढ लिया। जुमाल ने अपने नमदे में मुँह छिपा लिया और दुख से ठिठुर गयी। तभी एक अनजान आदमी मीनार के ऊपरी हिस्से से नीचे उतरा और फ़र्श पर लेटे कुनबे के बीच थम गया। अपना दायाँ हाथ दिल पर रखकर और सिर झुकाकर उसने सलाम किया। जुमाल ने भी उसके पास जाकर सलाम किया। आगन्तुक पराया आदमी था, जुमाल ने आज तक जितने लोग देखे थे उनमें से किसी के भी जैसा वह नहीं था। वह बहुत बड़ा और दुबला था, उसका चेहरा वैसा ही भला लग रहा था, जैसा किसी पालतू जानवर का होता है। मीनार के अँधेरे में भी नन्ही जुमाल को देखती उसकी आँखों में ऐसी वेदना थी, जैसे कि वह मर चुका हो।

ज़रीं ताज ने बेटी और दूसरे आदमी को देखकर उनसे कहा :

"यह हमारा काम है, हमारे नमदे पर, तुम जाओ यहाँ से," और उसने फिर से अपने मालिक और मरद को बाँहों में भर लिया। जुमाल ने आगन्तुक का हाथ पकड़ा और माँ के लिये रो पड़ी : लेकिन वह उसे ढाँढस नहीं दिला सका; वह भाग खड़ा हुआ, क्योंकि अताह बाबा उछलकर खड़ा हो गया था और पकड़ने लपका था। यह सब और अपनी बेबस माँ को देखकर वह भी आगन्तुक के पीछे दौड़ी।

तकीर पर उनके दौड़ने की आवाज़ गूँज रही थी; पर हताशा में गुस्से से ज़्यादा ज़ोर होता है, सोते तम्बुओं को पार करके अनजान मेहमान अँधेरे में खो गया, निश्श्क्त अताह बाबा पीछे रह गया। जुमाल उनके पीछे भाग रही थी—पता नहीं कहाँ, वह महसूस कर रही थी कि अब उसके लिये अकेले जीने का वक़्त आ गया है, उसके साथ कोई नहीं है, माँ भी उससे अलग जीती है—अपना दिल और अपनी बेबसी लिये। वह रात की ठण्डी ज़मीन पर लेट गयी और रोना बन्द करके अपने एकाकीपन में खामोश हो गयी—उसके तले ज़मीन भी खामोश थी।

अताह बाबा लौट रहा था, अब उसमें वह फुर्ती नहीं रही थी, जो तब थी जब वह गिरोह के साथ फारस गया था, तब से वह बुढ़ा और फूल गया था। उसकी नज़र

जुमाल पर पड़ी—उसकी जवान और कसमसाती देह पर। वह उसके रेवड़ों में पली थी और अब जवानी की उदासी उस पर चढ़ गयी थी। अताह ने जुमाल को ज़मीन से उठाया और उसकी छोटी-सी अनघड़ देह को दबोचकर तकीर की वीरानगी में ले चला।

अगले दिन जुमाल घर नहीं लौटी। वह तकीर के दूर के छोर पर चली गयी, वहाँ अकेली अपने गीत रचती और गाती रही, वह अब जीना नहीं चाहती थी।

शाम को जब जुमाल सो गयी तो माँ ने उसे ढूँढ लिया, उसे जगाया और घर ले चली, क्योंकि अताह बाबा ने उसे बेच दिया था और आधी रक़म पा ली थी—चार सौ रूसी रूबल और साथ ढोर-डंगर। जुमाल ग्रांक मानी जाती थी, मतलब वह असली तुर्कमान नस्ल की नहीं थी और उसकी क़ीमत कुर्दन के बराबर थी।

उसका खरीदार अधेड़ ओदा कारा अताह के साथ कालीन पर बैठा था और रेगिस्तान में ज़िन्दगी की बातें कर रहा था, यह कि हसन कुली में क्या हो रहा है और अमू के किनारों पर क्या, कि सुना है बुख़ारा में फिर से गुलामों का बाज़ार खुल गया है। ओदा कारा बहुत कुछ जानता था, मगर उसका कहना था कि उसकी अक़्ल दाढ़ी में उलझने लगी है, क्योंकि उसके पास तफरीह के लिये जवान बीवी नहीं है।

अताह बाबा इस बात पर राजी था कि तफ़रीह के बिना कोई नहीं जी सकता; आँसुओं से तो अच्छा है धात निकले।

"पर, ओदा, तुमने हाल ही में कुर्बान नियाज के तम्बू से बीवी ली है," अताह ने कहा। "वह अभी बूढ़ी नहीं है और उसकी सूरत भी अच्छी है।"

"हाँ, मैंने ली है," ओदा कारा ने हामी भरी। "पर अब दूसरी होनी चाहिये : मेरे कुनबे में छह बूढ़ी बीवियाँ जी रही थीं, एक मर गयी, उधर भेड़ें ब्याही हैं और गधियाँ भी। कौन यह काम सम्भालेगा? पुरानी बीवियाँ बुढ़ाती हैं, फिर मर जाती हैं, दो जवान ले लेनी चाहिये ताकि जल्दी न मरें।"

ज़रीं ताज और जुमाल मीनार के बाहर दरवाजे के पास बैठी बातें सुन रही थीं। बुढ़ायी ज़रीं ताज रो रही थी और बेटी को गले लगा रही थी। जुमाल माँ का लाड़ ले रही थी और रात की बात के लिये खफा नहीं हो रही थी—उसका बचकाना दिल अभी याददाश्त के बिना जी रहा था।

"माँ, हमारे यहाँ एक मेहमान आया था, जब तू अताह के साथ सो रही थी," जुमाल ने कहा, "वह तकीर में भाग गया।"

ज़रीं ताज ने बेटी को बताया कि दूसरी औरतों ने रेगिस्तान के इस एकाकी मेहमान के बारे में सुना है। वह बहुत दूर कहीं रूसियों से लड़ रहा था, उस इलाके में जहाँ जंगल और झीलें हैं—रूसियों ने उसे बन्दी बना लिया, पर वह छूटकर रेगिस्तान में भाग गया और अब भगोड़ा बनकर खौफ़ में जी रहा है।

"मतलब वह जल्दी ही मर जायेगा : उसके पास खाने को तो कुछ नहीं है!" जुमाल समझ गयी।

"वह दो साल से भागता फिर रहा है," माँ ने कहा। "वह मिट्टी के मटके बनाता है और खानाबदोशों के रास्तों पर रख देता है, लोग मटके ले लेते हैं और मर गयी भेड़ें छोड़ जाते हैं... ओदा कह रहा था कि मेहमान गाँवों में भी आता है, वहाँ चायखाने में समोवारों की मरम्मत करता है, दूसरों के लबादे सीता है और पेट भरता है।..."

जुमाल सोच में डूब गयी। ज़िन्दगी के राज, दूरियाँ और वह शोर, जो उसने कुछेक बार सुना था, जब ज़मीन पर कान लगाकर सोयी थी—यह सब उसे आकर्षित कर रहा था। ज़रीं ताज मेहमान और खाविन्द को नयी चाय देने के लिये उठी, पर अचानक उसका सारा चेहरा काला स्याह पड़ गया और कालीन तक, जहाँ ओदा कारा बैठा था, पहुँचने से पहले ही, उसकी सारी ताक़त जाती रही। वह बेशऊरी से मेहमान के पास लेट गयी और उसके होंठों पर मौत उफन आयी। ओदा कारा छिटककर खड़ा हो गया, डर के मारे परे हट गया। अताह बाबा ने बीवी को ठोकर मारी ताकि वह अपना डरावना चेहरा उसकी नज़रों से दूर कर ले। ज़रीं ताज ने खुद ही करवट बदली और निढाल हो गयी। वह बदन में फैलती आग महसूस कर रही थी, जो उसकी थकी हड्डियों को जला रही थी, और उसे राहत महसूस हो रही थी, मानो उसके सारे अंग, जो दर्द और थकान से कब के पस्त हो चुके थे, अब चटखते हुए सीधे हो रहे थे।

6

सुबह डेरा खाली हो गया। अताह बाबा ने रात को ही रेवड़ को हाँकने को कह दिया था। सारा असबाब वह यहीं छोड़े जा रहा था। घराना प्लेग से बचने के लिये भाग रहा था, जो इस जर्जर मीनार में फारसन को हुआ था—अब सौ साल तक यह स्थान निर्जन रहेगा, क्योंकि रेगिस्तान के बाशिन्दे अफवाहें और लम्बी याददाश्त लेकर जीते हैं। जुमाल किसी ज़माने में पत्थर से बनी, घिस चुकी सीढ़ियाँ चढ़कर मीनार के ऊपरवाले कमरे में जा छिपी। वहाँ फ़र्श पर लकड़ी का चम्मच पड़ा हुआ था, रोटी का टुकड़ा और तीन अधूरे घड़े। वह अनजान मेहमान, जो फिर से रेगिस्तान में भाग गया था, शायद यहाँ छिपकर रहता था।

सीढ़ियों पर थोड़ी नीचे उतरकर जुमाल यह देखने लगी कि नीचे माँ के पास क्या हो रहा है। ज़रीं ताज पत्थर के फ़र्श पर लेटी हुई थी—काली पड़ी और अपनी दुखद मौत की चेतना से शान्त। जुलेखा नाम की फारसन, जिसे ज़रीं ताज के साथ ही उठाकर लाये थे, उसे दूर से देखने आयी। फिर फारसी कासिम और दो कमरे—अगर और लाल आये, उन्होंने पत्थर की सेज को छुआ, जिस पर दम तोड़ती ज़री लेटी हुई थी, और चले गये—चिर विदाई की भावना हृदय में लिये। जुमाल माँ के पास आते डर रही थी, क्योंकि उसे यहाँ से ले जा सकते थे। वह सबके चले जाने का इन्तज़ार

कर रही थी।

पर ओदा कारा अताह बाबा के साथ लौट आया ताकि जुमाल को ढूँढकर अपने साथ ले जाये। उसके लिये वह पैसे दे चुका था। तब जुमाल दौड़कर नीचे आयी और माँ गिर पड़ी, उसे कसकर बाँहों में भर लिया। ज़रीं ताज की साँस अभी थोड़ी-थोड़ी चल रही थी, उसकी जान ज़िन्दगी में अटकी हुई थी।

इस लड़की को, जिसने प्लेग का आलिंगन किया था, अपने साथ ले जाते ओदा कारा और अताह को डर लगा और वे अपने-अपने घाटे के लिये उसे कोसते वहाँ से चले गये : एक को पूरी रक़म नहीं मिली और दूसरे ने बेकार में ही खर्चा किया।

7

सारे लोग, रेवड़ और कुत्ते बहुत दूर चले गये। तकीर सूना और वीरान हो गया, तुर्कमानिस्तान के आसमान जैसा। जुमाल बची-खुची चीज़ों से गृहस्थी चलाने लगी। उसे छह हलाल भेड़ें मिलीं, जिनका थोड़ा-सा हिस्सा ही खाने में खर्च हुआ था और जिन्हें भगदड़ में छोड़ गये थे। उसने माँ के लिये शोरबा पकाया और उसे थोड़ा-सा पिलाया। ज़रीं ताज अभी भी थोड़ा-थोड़ा जी रही थी, पूरी तरह जी उठते डर रही थी ताकि कहीं फिर एकदम न मर जाये। शाम को जुमाल मीनार से रेगिस्तान में नज़रें दौड़ाती। उसे इन्तज़ार था कि रेगिस्तार में कहीं भागता फिर रहा मेहमान आयेगा। मगर कोई नहीं आ रहा था—तकीर पर घास ही लुढ़कती जाती थी, यहाँ से दूर ओझल होती जाती थी, जहाँ वह फिर से उग सकेगी।

सूरज डूबता था और फिर से उगता था : वक्त बीत रहा था ताकि हर इंसान का दिल उसे सालते दर्द का आदी हो जाये। ज़रीं ताज सम्भल रही थी, वह चलने लगी और पहले की भाँति अपनी देह को ढोने लगी।

जब खाने के लिये कुछ न बचा तो ज़रीं ताज बेटी को साथ लेकर तकीर के पार चल दी—खीवा को जाते कारवाँ के रास्ते तक पहुँचने के इरादे से। लेकिन आधा तकीर पार करके ही ज़रीं ताज ज़मीन पर बैठ गयी, और चलने की हिम्मत उसमें नहीं रही थी।

"माँ, चलो हम मर जाती हैं," जुमाल ने कहा।

माँ के बगल में लेटकर उसने धीरज से आँखें मूँद लीं।

"तू भी आँखें बन्द कर ले, मुझे मत देख!" उसने माँ से कहा। "इस तरह हम जल्दी मर जायेंगी। क्या करना है आँखें खुली रखकर—कुछ भी तो नहीं है देखने को, सब कुछ हम देख चुकी हैं।..."

उसने माँ को अपने से सटाया और देखा कि वह कितनी सूख गयी है, बूढ़ी और

छोटी हो गयी है—उससे भी छोटी। उसने माँ को हिलाकर देखा : वह सूखी टहनी जैसी हल्की थी।

जुमाल खड़ी हो गयी। मरने का इरादा उसने फ़िलहाल छोड़ दिया। माँ को उठाकर वह उसे तकीर पर आगे ले चली। शाम होते होते वह तकीर के छोर पर पहुँच गयी और वहाँ रेत के गड्ढे में गरमाहट पाते हुए उन्होंने रात काटी।

सुबह उन्हें अनजान आदमी दिखा। वह उनके पास ही बैठा था। माँ-बेटी को सलाम करके उसने अपने झोले में से गोश्त का टुकड़ा निकालकर उन्हें दिया। जुमाल फ़ौरन पहचान गयी कि यह वही रातवाला मेहमान है और उसे देखकर खुश हो गयी। वह तुर्कमान नहीं था, हालाँकि तुर्कमान ज़बान बोलता था। उसके कपड़े ख़ाकी रंग के थे, पहनते-पहनते छिद गये थे। चेहरा उसका जवान और उजला था—दुख और विपदाएँ सहने का अभ्यस्त।

"तुम कौन हो?" जुमाल ने उससे पूछा।

"मैं आस्ट्रियाई हूँ, स्टीफन कतिग्रोब," घुमक्कड़ मेहमान ने कहा। "तुम कौन हो?"

जुमाल ने आस्ट्रियाइयों के बारे में कभी नहीं सुना था। सिर्फ़ दो बार उसने यह देखा था कि कैसे लोग गाँवों में बसकर रहते हैं। उसे अभी यह नहीं पता था कि इस दुनिया में शहर भी हैं, किताबें हैं, लड़ाइयाँ हैं, जंगल और झीलें हैं।

जुमाल कतिग्रोब के साथ बातें कर रही थी, खा और हँस रही थी, इस बीच रेत में अकेली लेटी ज़रीं ताज चुपचाप मर गयी।

थोड़ी देर बाद जुमाल ने माँ को कुछ खिलाना चाहा और उसे आवाज़ दी, मगर कोई जवाब नहीं आया। तब जुमाल ने माँ के पास जाकर उसे टटोला। उसने लिबास उघाड़ा और छाती देखी, जो दो काले मरे हुए केंचुओं जैसी थी—ये उन स्तनों के अवशेष थे, जिन्होंने कभी उसे दूध पिलाया था। माँ की चमड़ी पसलियों के बीच में धँसी हुई थी और दिल का कहीं पता नहीं चलता था, वह अब धड़क नहीं रहा था। उसकी सारी छाती इतनी छोटी थी कि बहुत थोड़ा-सा, सूखा हुआ ही कुछ उसमें हो सकता था—कोई सुख महसूस करने के लिये बुढ़िया के पास कुछ नहीं बचा था, दर्द सहने भर की ही ताक़त इस छाती में बची थी। ऐसी छाती कुछ भी नहीं कर सकती थी—न प्यार, न नफरत, हाँ, उस पर झुककर रोया जा सकता था। बाँदी मर गयी थी।

कतिग्रोब एक ओर खड़ा देख रहा था कि कैसे जुमाल अपनी माँ की मुर्दा देह को सहला रही है और अपने दिल में सोच और शोक भर रही है। फिर जब जुमाल ने माँ के कान में सुखी भाग्य के बारे में खुदा से अपनी फ़रियाद कह दी तो कतिग्रोब मृतका के पास आया, ताकि उसे उठाकर दफनाने ले जाये। ज़रीं ताज से न कोई गन्ध आ रही थी, न गरमाहट—कतिग्रोब ने एक खनिज की तरह उसे जाँचा और

तुरन्त ही उसका कलेजा डूब गया। वह खुद भी रो पड़ा... कहीं उसका वतन था, लड़ाई हो रही थी, वह सब जगहों से भाग गया था और लम्बे अरसे के लिये, शायद हमेशा-हमेशा के लिये ही इस मनहूस रेगिस्तान में आ छिपा था—जो बहुत पहले अपनी हड्डियाँ धूल में मिला और धूल हवा में उड़ा चुका था। वह, वियेना का चश्मासाज अब केवल मरीचिकाएँ देखता है, प्रकाश और जीवन की ओझल होती छायाएँ।

कतिग्रोब के विचारों का ताँता टूटा। उसके सामने जुमाल खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी—उदासी, भूख और गुलामी में पलकर भी वह सजीव, निश्छल और धीरज भरी थी। उसने लड़की को गोद में उठाया और उसकी काली, विश्वासी आँखों को चूम लिया।

रात को कतिग्रोब ज़रीं ताज को तकीर से दूर ले गया और वहाँ उसे रेत में दफना दिया।

जुमाल उसी जगह सो गयी जहाँ उसकी माँ मरी थी। कतिग्रोब ने उसे जगाया और तकीर के बीचोंबीच बनी मीनार में रहने उसे ले चला। वह समझता था कि तुर्कमान वहाँ जल्दी ही नहीं लौटेंगे, जब यूरोप में एक लड़ाई खत्म हो जायेगी, और शायद दूसरी शुरू हो जायेगी, तब तक वह एकान्त में मर जायेगा।

अगले दिन कतिग्रोब ने अपने झोले में बचा खाना जुमाल को देकर उसे मीनार में अकेला छोड़ दिया और खुद सौ वेर्स्ता* दूर खीवा को जाते कारवाँ रास्ते पर चला गया, जहाँ बर्कान कुआँ था।

वह छह दिन वहाँ रहा। जिसको जो ज़रूरत होती वही काम वह करता और बदले में भेड़ का गोश्त, चावल, प्याज़, माचिस और शराब पाता। नौवें या दसवें दिन वह खाना और अपनी कमाई लेकर तकीर पर जुमाल के पास लौट आता। एक बार वह बीमार गधे को, जिसे कारवाँ ने छोड़ दिया था, अपने साथ ले आया। जुमाल ने उसका इलाज करके उसे ठीक कर दिया और पाल लिया। एक सीपियों की माला लाया और उसके होंठों पर चुम्बन लिया। जुमाल उसकी भावना का कोई प्रतिरोध नहीं करती थी, मगर खुद उदासीन थी। उसे यह नहीं समझ में आता था कि आदमी को प्यार किसलिये किया जा सकता है। उसे अपनी माँ और कबीले की दूसरी औरतें याद थीं—उनमें बहुत-सी, जब उनका मरद मरता, तो सिर का रूमाल पानी से भिगो लेतीं, ताकि सूखी आँखों के लिये नमी हो जाये।

* 1 वेर्स्ता = 1.09 कि.मी.।—अनु.

8

छह साल तक वे साथ रहे। मीनार के आगे फैला तकीर पहले की ही भाँति निस्स्वर और निर्जीव था—जुमाल के भाग्य की तरह सूना। स्टीफन कतिग्रोब पहले की ही भाँति समय-समय पर कारवाँ के रास्ते पर जाता था, मगर अब कारवाँ नहीं आते थे, कभी-कभार ही वह आधी बोरी चावल या मरियल भेड़ कमा पाता।

एक चाँदनी रात को, जब कतिग्रोब वहाँ नहीं था, जुमाल को दूर से गोलियाँ चलने की आवाज़ सुनायी दी। उसने खंजर लिया, माचिस और थोड़े से चावल लिये और गधे पर सवार होकर उस दिशा को चल दी, जिधर से गोलियों की आवाज़ आयी थी। वह सारी रात और सारा दिन शाम तक चलती रही। उसे कोई नहीं मिला, वीरान तपी रेत में गधा थक गया और खड़ा हो गया। जुमाल उतरी और लगाम पकड़कर उसे आगे खींचने लगी कि कहीं कोई आदमी या कुआँ मिल जाये।

अनजान जगह पर रात काटकर सुबह जुमाल फिर से अपने गधे को आगे ले चली और शाम तक एक छोटे तकीर पर पहुँच गयी, जिसके पास कुआँ था। जुमाल ने कुएँ में से पानी निकाला, मगर वह गाढ़ा और सड़ा हुआ था—कुएँ में एक लाश पड़ी हुई थी। गधे के मुँह से प्यास के मारे झाग निकल रही थी, लेकिन उसने मशक से मुँह फेर लिया। तब जुमाल ने अपने लिबास का घेरा फाड़ा और उसे जलाकर गधे को इस तरह मोड़ा कि धुआँ उसके मुँह पर पड़े और वह पानी का स्वाद महसूस न करे। गधा पानी पीने लगा और तीन मशक पी गया, और अफरकर मर गया। जुमाल जानती थी कि कल वह भी मर जायेगी। उसे बस इस बात का अफ़सोस था कि माँ से बहुत दूर होगी।

रात को जुमाल ऊँघने लगी और ऊँघती ही रही—वह भूल गयी कि वह ज़िन्दा है और पता नहीं क्या-क्या करती रही : कभी उठती और चलती, कभी फिर से लेट जाती, फिर से दौड़ती, मुस्कराती और रोती, और सारा समय कुछ याद करने की कोशिश करती जो अधिक ही अधिक भूलता जा रहा था, अँधेरे में उससे दूर जाता और ओझल होता जा रहा था, जैसे कि दूर कहीं गूँजी चीख, और उसे पकड़ने के लिये वह हाथ फैलाती। एक बार वह शान्तचित्त जागी। ठण्डक थी। उसके मुँह पर चाँदनी चमक रही थी, पास ही दबी आवाज़ में लोग बातें कर रहे थे : अताह बाबा, ओदा कारा और चार अनजान लोग। तकीर के छोर पर घोड़े चर रहे थे, उनकी ज़ीनें कसी हुई थीं। छोटा-सा अलाव जल रहा था और उस पर पतीली में पानी उबल रहा था।

जुमाल उठ गयी; कोई उसे देखकर खुश नहीं हुआ, न ही इस बात पर हैरान—शायद इन लोगों की कोई अपनी चिन्ताएँ थीं। पर फिर भी ओदा कारा ने जुमाल को रोटी

का टुकड़ा दिया और उसने देखा कि हर आदमी के पास बन्दूक रखी हुई है। उन्होंने जुमाल से पूछा कि उसने लाल फौजियों को देखा है या नहीं, पर जुमाल नहीं जानती थी कि यह क्या है। अताह को उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ।

"तू ही कुएँ खराब कर रही है!" वह चिल्लाया।

"नहीं," जुमाल ने कहा।

"झूठ बोलती है, हरामखोर, जासूस कहीं की," अताह ने विश्वास नहीं किया। "गुलाम सभी लाल हैं।"

"एक घूँट पानी दे दो।," जुमाल ने अर्ज की। "तुम्हारा पानी भाप बनकर उड़ रहा है।"

"कल पीना," अताह बाबा बोला। "यह पानी तेरे लिये खारा है।"

वे चाय पीने लगे और पतीली का सारा पानी पी गये। जुमाल ने मुँह मोड़ लिया, गुस्से से उसकी प्यास जाती रही—यह पानी वह नहीं पीना चाहती थी।

रात के तीसरे पहर सब सो गये, सिवाय ओदा कारा के, जो घोड़ों और बन्दूकों की रखवाली के लिये जागता रहा। यह याद करके कि जुमाल तो उसकी ख़रीदी बीवी है, ओदा कारा उसके पास सरक आया और बगल में लेट गया। फिर जब उसने जुमाल को कसकर बाँहों में भर लिया और इस तरह उसके हाथ खाली नहीं रहे, तब जुमाल ने उसकी दाढ़ी पकड़ी और खंजर उसके गले में घोंप दिया।

ओदा कारा के मुँह से चीख नहीं निकली, बस आख़िरी लफ़्ज़ बुदबुदाकर वह मर गया।

जुमाल ने लाश को अपने ऊपर से हटाया और कोहनियों के बल उठी। पाँचों के पाँचों सो रहे थे, चाँद भोर के आकाश में डूब रहा था, चारों ओर खुला स्वच्छ विस्तार था। उसने तय किया कि उसकी गुलाम माँ कहीं मरी पड़ी हैं तो ये आज़ाद और अमीर लोग भी रेगिस्तान में मर जायें।

वह खड़ी हो गयी और घोड़ों की ओर चल दी, बिना किसी सावधानी के उसने छाँदे घोड़ों को खोल दिया। एक घोड़े को अपने पीछे ले आयी, सारी बन्दूकें जमा कीं, उन्हें बाँध लिया और ज़ीन पर रखकर अपने साथ ले चली। घोड़े को एड़ी देकर जुमाल उसे दौड़ा ले चली, भोर वेला में वह ताज़ी हो गयी थी और उसे अपनी सुध आ गयी थी, मानो ओस ने उसकी प्यास बुझा दी हो। खुले घोड़े भी उसके पीछे हो लिये, उन्हें कब से पानी नहीं मिला था, अब वे उसके पीछे दौड़ रहे थे, यह सोचते हुए कि पानी मिलेगा।

दो या तीन घण्टे बाद लाल सैनिकों की गश्त उसे मिली। उन्होंने उससे बन्दूकें छीन लीं और अताह बाबा के लुटेरे गिरोह की जानकारी देने को कहा।

9

उस घटना के बाद मीनारवाले तकीर पर जुमाल को गये ज़माना बीत गया–पूरे दस साल। इन बरसों में वह अश्काबाद और ताशकन्द में रही और कृषि संस्थान की पढ़ाई उसने पूरी की।

जुमाल ताजीयेवा (माँ के नाम पर उसने अपना कुलनाम रखा था) हर जगह आस्ट्रियाई युद्धबन्दी के बारे में पूछताछ करती रही थी, मगर कहीं कोई जानकारी उसे नहीं मिली।

जुमाल जानती थी कि जाउंगूस गर्त के पास कहीं प्राचीन वनस्पतियों का एक छोटा सा आरक्षित क्षेत्र है और वहाँ बस एक आदमी बन्दूक और दो कुत्ते लेकर रह रहा है। वहीं शायद मीनार थी और बड़ा तकीर था। पर वहाँ जाने की फुरसत वह नहीं निकाल पा रही थी, हर साल अगले के लिये टाल देती थी।

एक बार वसन्त में ताजीयेवा को काराकुम रेगिस्तान में प्रायोगिक बाग़बानी के लिये जगह तय करने का काम सौंपा गया। जुमाल ताजीयेवा ने अपना यूरोपीय पहनावा–चोली और स्कर्ट–उतारा, ईरानी काला लिबास पहना, पतली सफ़ेद शाल ओढ़ी और सुबह-सुबह घोड़े पर सवार होकर अश्काबाद से रवाना हुई। उसके पास दस वेर्स्ता अनुमाप का नक्शा था और उससे वह यह अनुमान लगा रही थी कि बड़ा तकीर कहाँ हो सकता है। लेकिन चली वह प्राचीन रेगिस्तानी वनस्पतियों के अभ्यारण्य की ओर ही–एक विशेषज्ञ और रेगिस्तान की निवासिनों के नाते उसकी इसमें रुचि थी।

उकताऊ सफ़र के पाँचवें दिन अचानक उसे मीनार के सुनहरे साँपवाला नीला गुम्बद और उसके गिर्द फैला शाश्वत तकीर नज़र आया।

चारों ओर वैसी ही वीरानगी थी, मानो वक्त न गुज़रा हो, जुमाल पहले जैसी ही जवान और विचारमग्न हो, उसने नदियाँ और शहर न देखे हों, उसके सूने दिल पर गूंजती हवा के अलावा उसने दुनिया में कुछ भी न जाना हो।

दोपहर का वक़्त था, मई की धूप में जुमाल का सारा रेतीला, चिकना, विशाल और उदास वतन चमक रहा था। वह उजाड़ मीनार के पास गयी, सोचने लगी : तकीर बहुत बड़ा है, इसके पास मीठे पानी का बड़ा कुआँ हैं। मैं यहाँ बस जाऊँगी और यहीं हम बाग लगायेंगे। यहाँ मेरा वतन है।

जुमाल मीनार के अन्दर गयी। एक कोने में इंसान का कंकाल था, जिस पर कपड़ों के कुछ चिथड़े बचे रह गये थे, उसकी हड्डियाँ उसकी हत्या किये जाते समय धँस गयी थी, या उसकी मौत के बाद किसी ने तोड़ी थी। जुमाल कंकाल पर झुकी।–हड्डियाँ कब की सूख चुकी थीं, मुड़ी हुई खोपड़ी दीवार की ओर देख रही थी, कुछ पसलियाँ नहीं थीं और छाती यों कुचली हुई थी जैसे उस पर घन से प्रहार किया

गया हो।

आस्ट्रियाई जैकेट के चिथड़ों में उसने जेब ढूँढ ली, मगर उसमें कुछ नहीं था। दरवाज़े के पास दीवार पर जर्मन भाषा में लिखा था :

"तुम मेरे पास आओगी, जुमाल, और हमारी मुलाकात होगी।"

"मैं आ गयी हूँ, हमारी मुलाकात हो गयी," जुमाल ने सूनी मीनार में ज़ोर से कहा।

मीनार से बाहर निकलकर वह घोड़े पर तकीर का चक्कर लगाने लगी, ताकि भावी बाग के आकार का अनुमान लगा सके। कुछ वेर्स्ता पार करने पर उसे तकीर से ज़रा परे रेत में कंटीले तार की बाड़ नज़र आयी और वह उसकी ओर बढ़ी। बाड़ के पीछे विरला घास-पात उग रहा था, आगे दूर चौकीदार का घर था, बाड़ के पीछे क़ब्रों पर तीन रूसी सलीब लगे हुए थे और एक क़ब्र पर सीधा खड़ा पत्थर। पत्थर पर लैटिन अक्षरों में खुदा हुआ था : "बूढ़ी जुमाल"।

जुमाल घोड़े से उतरकर कंटीले तार के सामने घुटनों के बल बैठ गयी, फारसी रूमाल से उसने अपना चेहरा ढाँप लिया, वह नहीं जानती थी कि उसे किसी और तरह करना चाहिये। उसे वे शब्द याद आये जो उसकी माँ ने किसी के बारे में रोते हुए कह रहे थे : "हाय, यह कैसा दुखड़ा है मेरा, जो चला गया, वह कभी लौटकर नहीं आयेगा"।

मुँह से रूमाल हटाने पर जुमाल ने माँ की कब्र के पत्थर के पास उगता सुरमई डण्ठल देखा–यह विरली प्राचीन वनस्पति थी–वह उसके चित्र और नाम से उसे पहचान गयी, और बचपन की याद से भी, पर तब वह उसका महत्व नहीं समझती थी। सो, वह जहाँ जाना चाहती थी, वहाँ पहुँच गयी थी, यहीं धरती से विलुप्त हो रही वनस्पतियों का अभ्यारण्य था।

तीसरा बेटा

एक शहर में बुढ़िया चल बसी। उसके पति, सत्तर बरस के पेंशनयाफ्ता मज़दूर ने तारघर जाकर देश के अलग-अलग कोनों को एक ही मजमून के छह तार भेजे : "माँ चल बसी। चले आओ।"

तारघर की अधेड़ क्लर्क बड़ी देर तक पैसों के हिसाब लगाती रही—जोड़ में गलती करती और फिर से गिनती रही, रसीदें लिखती रही, काँपते हाथों से तार के फार्मों पर मोहर लगती रही। बूढ़ा अपनी दीन लाल आँखों से उसे देख रहा था और अन्यमनस्क-सा कुछ सोच रहा था, ताकि किसी तरह दुख का ध्यान उसके दिल से हट जाये। उसे लग रहा था कि इस अधेड़ औरत का भी दिल टूटा हुआ है और उसके मन में बौखलाहट सदा के लिये बस गयी है—हो सकता है, वह विधवा हो या ऐसी अभागिन, जिसका मरद उसे छोड़ गया है।

अब वह धीरे-धीरे काम करती है, पैसों के हिसाब में गड़बड़ाती है, ध्यान खो बैठती है, कुछ याद नहीं रख पाती। मामूली-से काम के लिये भी इंसान को मन का चैन चाहिये।

तार भेजकर बूढ़ा बाप घर लौट आया। वह लम्बी मेज के पास, अपनी दिवंगत पत्नी के पैताने बैठ गया। कभी वह उदास शब्द बुदबुदाता, कभी सिगरेट पीने लगता, पिंजड़े में डण्डियों पर फुदक रही चिड़िया के एकाकी जीवन को देखने लगता, कभी निस्स्वर रोने लगता, फिर शान्त हो जाता, जेब घड़ी में चाबी भरता, खिड़की पर नज़र डालकर, जिसके बाहर प्रकृति में मौसम बदल रहा था—कभी हिम के गीले, थके-थके फायों के साथ पत्तियाँ गिरतीं, फिर बारिश होने लगती और कभी पतझड़ का सूरज चमकने लगता, जो तारे की तरह कोई गरमाहट न देता। बूढ़ा बेटों की राह देख रहा था।

पहला, बड़ा बेटा अगले दिन ही हवाई जहाज पर आ गया। बाकी पाँच बेटे अगले दो दिनों में पहुँच गये।

तीसरा बेटा अपनी छह साल की बेटी को साथ लाया था, जिसने दादा को कभी देखा नहीं था।

माँ चार दिन से उनका इन्तज़ार कर रही थी, मगर उसकी देह से मृत्यु की दुर्गन्ध नहीं आती थी, वह बीमारी और कमज़ोरी से इतनी सूख चुकी थी। बेटों को विपुल, स्वस्थ जीवन प्रदान करके बूढ़ी ने अपने लिये क्षुद्र, कृश काया ही शेष रखी थी और

बहुत देर तक यह कोशिश करती रही थी कि भले ही बिल्कुल दीन रूप में, पर यह काया बनी रहे ताकि वह अपने बच्चों से प्यार और उन पर गर्व कर सके।

भीमकाय पुरुष—बीस से चालीस तक की आयु के—मेज पर रखे ताबूत के गिर्द खड़े हो गये। वे छह जने थे। सातवाँ उनका पिता था, जो क़द में सबसे छोटे बेटे से भी छोटा था, और उससे दुर्बल भी। दादा ने पोती को गोद में उठा रखा था। मरी हुई अनजान बुढ़िया से डरकर, जो अधमुँदी पलकों तले से, अपनी सफेद निर्निमेष आँखों से उसे देख रही थी, बच्चों ने आँखें भींच लीं।

बेटे अपने आँसू पीते हुए चुपचाप रो रहे थे, दुख को निस्स्वर सहने की चेष्टा में उनके चेहरे विकृत हो रहे थे। उनका पिता अब नहीं रो रहा था, वह सबसे पहले, अकेला ही सारे आँसू बहा चुका था, और अब मन ही मन उत्तेजित होते और बेमौके की खुशी महसूस करते हुए अपने बेटों को निहार रहा था। दो बेटे नौसेना में थे—जहाजों के कमाण्डर, एक बेटा मास्को के थियेटर में कलाकार था, एक, जो बेटी को साथ लाया था, भौतिकविज्ञानी था, सबसे छोटा कृषिशास्त्र की पढ़ाई कर रहा था और सबसे बड़ा बेटा हवाई जहाज़ बनानेवाले कारखाने में एक खाते का प्रधान था और अपने काम के लिये उसे पदक मिला था। छहों के छहों बेटे और सातवाँ उनका पिता मृत माँ के गिर्द खड़े थे और निस्स्वर उसका शोक मना रहे थे, एक दूसरे से अपनी हताशा छिपा रहे थे। हर किसी की बचपन की अपनी यादें थीं, हर कोई यह महसूस कर रहा था कि ममता का वह सुख नहीं रहा, जो प्रतिपल माँ के हृदय में जन्म लेता था और सदा हज़ारों मील दूर भी उन्हें ढूँढ लेता था, और वे सदा यह अनुभव करते थे, और इसकी चेतना उन्हें अधिक शक्तिशाली बनाती थी, वे अधिक साहस से जीवन में सफलता पाते थे। अब माँ मृत देह बन गयी थी, वह किसी को प्यार नहीं कर सकती थी, और बेगानी उदासीन बुढ़िया-सी लेटी हुई थी।

उसका हर बेटा अब अपने को अकेला और भयग्रस्त अनुभव कर रहा था, मानो अँधेरे मैदान में कहीं पुराने घर की खिड़की पर दीया जलता था और रात को, उड़ते गुबरैलों, नीली घास और हवा में मँडराते पतंगों के झुण्डों को रोशन करता था—बचपन की उस सारी दुनिया को जो पुराने घर के चारों ओर थी; इस घर में जो जन्मे थे वे उसे छोड़कर चले गये थे, उस घर के दरवाजे कभी बन्द नहीं होते थे ताकि जो उसे छोड़कर गये थे वे वहाँ लौट सकें, मगर कोई लौटकर नहीं आया। अब मानो एकाएक रात की खिड़की में रोशनी बुझ गयी और वास्तविकता याद बनकर रह गयी।

मरते हुए बुढ़िया अपने बूढ़े पति से कह गयी थी कि वह पादरी को घर बुलाकर ही आख़िरी पूजा करवा ले, कब्रिस्तान में पादरी को साथ ले जाने की कोई ज़रूरत नहीं, ताकि कम्युनिस्ट बेटों को कोई संकोच न हो। ऐसा तो नहीं था कि बुढ़िया को परलोक में, भगवान में कोई गहरी आस्था हो, वह तो बस इतना चाहती थी कि उसका पति, जिससे उसने सारी उम्र प्यार किया था, प्रार्थना के स्वर सुनते हुए मोमबत्तियों

की रोशनी में उसका मृत चेहरा देखते हुए अधिक उदास और दुखी हो; वह किसी अनुष्ठान के बिना, याददाश्त छोड़े बिना इस जीवन से जुदा न हो। बच्चों के आ जाने पर बूढ़ा बड़ी दरे तक कोई पादरी ढूँढता रहा, आखिर दिन ढले एक आदमी को ले आया—वह भी बूढ़ा था, साधारण वस्त्र पहने था, निरामिष रूखे आहार से उसका चेहरा फीका पड़ गया था, पर आँखें चंचल थीं, उनमें तृष्णाएँ चमकती थीं। पादरी बगल में फौजी कमाण्डरों वाला बैग लटकाये आया था, उसमें वह पूजा का सामान लाया था : लोबान, पतली मोमबत्तियां, किताब, पूजा के समय पहनने का पादरियों का लबादा और जंजीर से लटकता छोटा-सा लोबानदान। उसने जल्दी-जल्दी ताबूत के गिर्द मोमबत्तियाँ लगाकर जला दीं, लोबानदान में लोबान सुलगाया और फौरन ही, कुछ भी कहे बिना किताब में से प्रार्थनाएँ पढ़ने लगा। कमरे में बैठे बेटे खड़े हो गये, वे पता नहीं क्यों अटपटा और शर्मिन्दा महसूस कर रहे थे। वे ताबूत के सामने लाइन लगाकर एक दूसरे के पीछे खड़े थे। उनके सामने खड़ा बूढ़ा जल्दी-जल्दी, प्रायः व्यंग्यात्मक स्वर में गा और बुदबुदा रहा था, अपनी छोटी-छोटी, सब कुछ समझती आँखों से बुढ़िया के वंशजों की पलटन को देख रहा था। वह उनसे कुछ-कुछ डरता भी था और कुछ हद तक उनकी इज्जत भी करता था, शायद उनसे बातचीत भी करना चाहता था, समाजवाद के निर्माण पर अपना उत्साह भी प्रकट करना चाहता था। लेकिन बेटे चुप थे, कोई भी, बुढ़िया का पति तक भी सलीब का निशान नहीं बना रहा था—यह अन्तिम पूजा नहीं, ताबूत पर पहरा ही था।

यह चटपट की पूजा पूरी करके पादरी ने जल्दी-जल्दी अपना सामान जमा किया, फिर ताबूत के पास जलती मोमबत्तियाँ बुझा दीं और सब कुछ बैग में बन्द कर दिया। बेटों के पिता ने उसके हाथ में पैसे थमाये, पादरी छह जवानों की, जिन्होंने उसकी ओर देखा तक नहीं, क़तार के सामने से गुज़रा और सहमा-सा बाहर निकल गया। वैसे तो वह खुशी-खुशी इस घर में रुका रहता, सबके साथ क़ब्रिस्तान से लौटकर महाभोज में भाग लेता, युद्धों और क्रान्तियों के परिप्रेक्ष्यों की बातें करता और नये संसार के प्रतिनिधियों से भेंट का सन्तोष पाता। इस संसार पर वह मन ही मन विमुग्ध था, लेकिन उसमें पैठने में असमर्थ था; वह यह सपना देखा करता था कि कभी एकबारगी ही कोई ऐसा वीरतापूर्ण कार्य कर दिखायेगा, जिससे उज्ज्वल भविष्य में, नयी पीढ़ियों के दायरे में पहुँच जायेगा—इसके लिय उसने शहर के हवाई अड्डे में अर्जी दी थी कि हवाई जहाज जितनी ऊपर से ऊपर जा सकता है, वहाँ तक उसे हवाई जहाज में ले जायें और वहाँ से आक्सीजन मास्क के बिना पैराशूट पर उसे गिरा दें, लेकिन कोई जवाब नहीं मिला।

शाम को पिता ने छहों बेटों के लिये दूसरे कमरे में बिस्तर बिछा दिये, पोती को अपने साथ पलंग पर लिटाया, जहाँ चालीस साल तक बुढ़िया सोती रही थी। पलंग उसी कमरे में था, जिसमें ताबूत रखा हुआ था, बेटे दूसरे कमरे में चले गये। बेटे

कपड़े उतारकर लेट गये तो पिता ने दरवाजा भिड़ाया और सारी बत्तियाँ बुझाकर सोने चला गया। पोती खुले पलंग पर सिर तक रजाई ओढ़े सो रही थी।

बूढ़ा कुछ देर तक रात के झुटपुटे में खड़ा उसे देखता रहा; बाहर गिरा हिम आकाश का विसरित मन्द प्रकाश बटोर रहा था और खिड़की से कमरे में उजाला कर रहा था। खुले ताबूत के पास जाकर बूढ़े ने पत्नी से विदा ली। हौले से पोती के बगल में लेटकर आँखें मूँद लीं ताकि दिल सब कुछ भूल जाये। उसकी आँख लग गयी पर फिर अचानक नींद टूट गयी। जिस कमरे में बेटे सो रहे थे उसके दरवाजे के नीचे से रोशनी आ रही थी—वहाँ बेटों ने बिजली जला दी थी, उनकी बातों और हँसने की आवाज़ें आ रही थीं।

बच्ची शोर के कारण करवटें बदलने लगी थी, शायद वह भी नहीं सो रही थी, लेकिन रजाई में से सिर निकालते डर रही थी—रात से और मृत बुढ़िया से डर रही थी।

बड़ा बेटा बड़े उत्साह से प्रोपेलरों के बारे में बता रहा था, उसकी भारी आवाज़ उसकी सेहत का आभास देती थी। नौसैनिक भाई विदेशी बन्दरगाहों में हुई घटनाएँ सुना रहे थे, फिर वे इस बात पर हँसने लगे कि पिता ने उन्हें वे पुराने कम्बल दे दिये हैं, जो वे बचपन और किशोरावस्था में ओढ़ा करते थे। इन कम्बलों पर ऊपर और नीचे पट्टियाँ सिली हुई थीं और उन पर लिखा था "सिर", "पैर", ताकि कम्बल ठीक बिछाया जाये और पैताने का मैला सिरा सिर पर न लिया जाये। फिर एक नौसैनिक कलाकार भाई से गुत्थमगुत्था होने लगा, वे फ़र्श पर लोटने लगे, जैसे तब करते थे जब सब यहाँ इकट्ठे रहते थे। छोटा बेटा उन्हें उकसा रहा था, कह रहा था वह दोनों को अपने बायें हाथ पर उठा सकता है। प्रत्यक्षतः, सभी भाइयों को एक दूसरे से प्यार था और वे अपनी इस मुलाकात पर खुश थे। कितने ही बरसों से वे सब इकट्ठे जमा नहीं हुए थे और भविष्य में पता नहीं फिर कब इकट्ठे होंगे। शायद, पिता के अन्तिम संस्कार के लिये ही? लोटते-पोटते भाइयों ने कुर्सी गिरा दी, तब वे क्षण भर को चुप हो गये, लेकिन फिर शायद यह याद करके कि माँ मर चुकी है, कुछ नहीं सुन रही, उन्होंने अपना काम जारी रखा। थोड़ी देर में बड़े बेटे ने कलाकार से कहा कि वह कोई गीत सुनाये : वह तो मास्को के अच्छे-अच्छे गीत जानता होगा। लेकिन कलाकार ने कहा कि वह यों ही अचानक गाना शुरू नहीं कर सकता। "अच्छा, मुझे कुछ ओढ़ा दो," उसने कहा। उसके सिर पर कुछ ओढ़ा दिया गया और वह ओढ़न के पीछे से दबी आवाज़ में गाने लगा, ताकि शुरू करते शर्म न आये। उधर छोटे बेटे ने कुछ किया, जिससे एक भाई फ़र्श पर लेटे दूसरे भाई पर गिर पड़ा। सब हँस पड़े और छोटे से कहने लगे कि वह फ़र्श पर गिरे भाई को बायें हाथ से उठाकर वापस लिटाये। छोटे ने हौले से भाइयों को जवाब दिया, जिस पर दो भाइयों ने ठहाका मारा—इतनी ज़ोर से कि पोती ने अँधेरे कमरे में रजाई से सिर बाहर निकाल लिया

और पुकारा :

"दादा! दादा! तुम सो तो नहीं रहे?"

"नहीं, मैं नहीं सो रहा, कोई नहीं," बूढ़ा बोला और हौले से खाँसा।

बच्ची से रहा न गया, उसने सिसकी भरी। बूढ़े ने उसका चेहरा सहलाया : वह गीला था।

"रो क्यों रही है?" बूढ़े ने हौले से पूछा।

"मुझे दादी पर तरस आ रहा है," पोती बोली। "सब जी रहे हैं, हँस रहे हैं और वह मर गयी।"

बूढ़ा कुछ नहीं बोला। वह कभी नाक से सूँ-सूँ कर रहा था, कभी खखार रहा था। बच्ची को डर लगने लगा, वह कोहनी के बल उठ गयी ताकि दादा को अच्छी तरह देख सके और यह जान ले कि वह नहीं सो रहा। उसके चेहरे को ध्यान से देखकर वह बोली :

"तुम भी क्यों रो रहे हो? मैं तो अब नहीं रो रही।"

दादा ने उसके सिर पर हाथ फेरा और फुसफुसाते हुए कहा :

"कुछ नहीं... मैं रो नहीं रहा, मुझे पसीना आ रहा है।

बच्ची दादा के सिरहाने पलंग पर बैठ गयी।

"तुम दादी के बिना उदास हो रहे हो?" वह बोली। "रोओ मत : तुम बूढ़े हो, जल्दी ही मर जाओगे, तब फिर कभी नहीं रोओगे।"

"नहीं रोऊँगा," बूढ़े ने हौले से जवाब दिया।

दूसरे कमरे में अचानक खामोशी छा गयी। इससे पहले किसी बेटे ने कुछ कहा। तुरन्त ही सब चुप हो गये। एक बेटे ने धीरे से कुछ कहा। बूढ़ा उसकी आवाज़ से पहचान गया कि वह तीसरा बेटा है, भौतिकविज्ञानी, बच्ची का बाप। अभी तक उसकी आवाज़ सुनायी नहीं दी थी : वह कुछ नहीं बोला था और न ही हँसा था। अब उसने किसी तरह भाइयों को शान्त कर दिया था और वे बातें भी नहीं कर रहे थे।

थोड़ी देर में दरवाजा खुला और वहाँ से तीसरा बेटा निकला, दिन के कपड़े पहने। वह ताबूत में लेटी माँ के पास गया और उसके धुँधले चेहरे पर झुका, जिसमें किसी के लिये अब कोई भाव नहीं था।

देर रात का सन्नाटा छा गया था। बाहर सड़क पर कोई आ-जा नहीं रहा था। दूसरे कमरे में पाँच भाई हिल-डुल नहीं रहे थे। बूढ़ा और उसकी पोती साँस रोके अपने बेटे और पिता को देख रहे थे।

तीसरा बेटा अचानक तनकर सीधा हो गया, अँधेरे में उसने हाथ बढ़ाया और ताबूत का सिरा पकड़ लिया, मगर सम्भल नहीं सका और उसे मेज पर एक ओर घसीट दिया और खुद फ़र्श पर गिर पड़ा। उसका सिर फ़र्श के पटरों से टकराया,

लेकिन बेटे के मुँह से कोई आवाज़ नहीं निकली—बस उसकी बेटी ही चीखी।

पाँचों भाई दौड़े-दौड़े भाई के पास आये और उसे अपने कमरे मे ले गये—उसे होश में लाने और शान्त कराने के लिये। थोड़े समय बाद जब तीसरे बेटे को होश आया तो बाकी बेटे अपनी वर्दी और कपड़े पहन चुके थे, हालाँकि अभी रात के दो भी नहीं बजे थे। वे चुपके से घर में, अहाते में एक-एक करके तितर-बितर हो गये, उस घर के गिर्द फैली रात में दुबक गये, जहाँ उनका बचपन बीता था, और वहाँ रोने लगे, कुछ बुदबुदाते और दुखड़ा कहते हुए मानो हर किसी के सिर पर माँ खड़ी थी, उसकी बातें सुन रही थी और दुखी हो रही थी कि वह मर गयी है और अब बच्चे उसके वियोग की पीड़ा सह रहे हैं; उसका बस चलता तो वह हमेशा जीती रहती ताकि कोई भी उसके लिये दुखी न होता, उसके वियोग में अपना हृदय और शरीर न घोलता जो उसने जना था। लेकिन माँ से ज़्यादा लम्बा जीवन न सहा गया।

सुबह छह बेटों ने ताबूत को कन्धों पर उठाया और उसे दफनाने ले चले। बूढ़ा पोती को गोद में उठाकर उनके पीछे-पीछे चला। वह अब बुढ़िया के लिये अपनी उदासी का आदी हो गया था। उसे यह सोचकर सन्तोष और गर्व हो रहा था कि ये छह बलवान उसे भी ऐसे ही दफ़नायेंगे।

अनुपम और क्रूर संसार

1

हमारे डिपो में अलेक्सान्द्र माल्त्सेव सबसे अच्छा इंजन ड्राइवर माना जाता था। उसकी उम्र तीस के आस-पास ही थी, मगर वह इंजन ड्राइवरी का पहला दर्जा पा चुका था और अरसे से एक्सप्रेस गाड़ियाँ चला रहा था। जब हमारे डिपो में 'ई. एस.' सीरिज का पहला ताक़तवर इंजन आया तो माल्त्सेव को ही उसे चलाने का काम सौंपा गया और यह सही भी था। मुझे उसका मददगार बनाया गया। अपनी इस नियुक्ति पर मैं खुश था। 'ई. एस.' इंजन अपने रूप-रंग से ही मुझे उत्साहित करता था। मैं उसे देर तक निहारता रहता और मेरे हृदय में हर्षोल्लास की लहर उमड़ती। यह वैसी ही अनुपम खुशी थी जैसी बचपन मे पुश्किन की कविताएँ पहली बार पढ़ने पर मैंने अनुभव की थी। पहले दर्जे के ड्राइवर के साथ काम करने, एक्सप्रेस गाड़ियों को चलाना सीखने का यह सुनहरी मौका था। माल्त्सेव ने मेरी नियुक्ति को उदासीनता से लिया। लगता था उसे इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसका मददगार कौन होगा।

वह अपने हुनर में पूरी माहिरी पा चुके आदमी के साहसपूर्ण आत्मविश्वास के साथ गाड़ी चलाता था। उस समय वह किसी महान कलाकार की तरह एकाग्रचित्त होता था, जिसने अपने हृदय की उथल-पुथल में सारे संसार का समावेश कर लिया हो और इसलिये अब उससे ऊपर उठ गया हो। माल्त्सेव की आँखें सामने लगी रहतीं, शून्य में ताक़ती हुई सी, किन्तु मैं जानता था कि वह इनसे आगे का सारा रास्ता और हमारे सामने चली आ रही प्रकृति को देखता है, उस गौरैये तक को, जिसे दिक को चीरते हुए बढ़ते इंजन की हवा का झोंका पटरी के पुश्ते से उड़ा देता था। उस चिड़िया तक की ओर माल्त्सेव की दृष्टि आकर्षित होती और वह पल भर को उसके पीछे सिर घुमाता : हमारे बाद उसका क्या होगा, वह किधर उड़ गयी?

आम तौर पर हम चुपचाप ही काम करते थे। बस कभी-कभार ही माल्त्सेव मेरी ओर सिर घुमाये बिना चाबी से बायलर पर ठकठक करता ताकि मैं इंजन के काम में आयी किसी गड़बड़ी की ओर ध्यान दूँ, या इस बात के लिये तैयार हो जाऊँ कि इंजन का काम जल्दी ही बदलना होगा। अपने बड़े साथी के ये मौन संकेत मैं सदा समझ जाता था और पूरे जतन से काम करता था, लेकिन फिर भी वह मुझे ऐसे ही देखता था जैसे मैं कोई खलासी होऊँ। गाड़ी रुकने पर वह हमेशा यह जाँचता कि

मैंने कहाँ कैसे तेल दिया है, बोल्ट कैसे कसे हैं।

उसे हमारे सम्मुख अपनी श्रेष्ठता का पूरा अहसास था, क्योंकि वह इंजन को कहीं अधिक अच्छी तरह समझता था और यह नहीं मानता था कि मैं या दूसरा कोई उसके हुनर का राज सीख सकता है—एक साथ ही राह में उड़ता पंछी और सामने का सिग्नल देखने और साथ ही पटरी को, गाड़ी के भार और इंजन के ज़ोर को महसूस करने का हुनर। माल्त्सेव यह तो समझता था कि अपनी कर्मठता में, अपने जतनों में हम उससे भी आगे बढ़ सकते हैं, लेकिन वह यह कल्पना नहीं कर सकता था कि इंजन से लगाव में और गाड़ी चलाने में उससे आगे बढ़ सकते हैं। वह शायद यही सोचता था कि इसमें उसे कोई नहीं पछाड़ सकता। इसलिये हमारे साथ उसका जी नहीं लगता था, अपने हुनर में वह अकेलापन महसूस करता था, और उसे यह नहीं सूझता था कि कैसे हमें यह सब बताये ताकि हम समझ जायें।

हम सचमुच ही उसके हुनर, उसके कौशल को समझने में असमर्थ थे। एक बार मैंने उससे कहा कि वह मुझे गाड़ी चलाने दे। माल्त्सेव ने कोई चालीस किलोमीटर तक गाड़ी चलाने दी, खुद मददगार की सीट पर गया। मैं गाड़ी चलाने लगा। बीस किलोमीटर बाद ही हम चार मिनट लेट हो गये, लम्बी चढ़ाइयों पर मैं तीस किलोमीटर फी घण्टा से अधिक की रफ्तार नहीं ले पाता था। मेरे बाद माल्त्सेव गाड़ी चलाने लगा : चढ़ाइयों पर उसकी रफ्तार पचास किलोमीटर होती, मोड़ों पर इंजन वैसे हिचकोले नहीं खाता था, जैसे मेरे चलाने पर खा रहा था। जल्दी ही गाड़ी फिर टाइम से चलने लगी।

2

लगभग एक साल तक, अगस्त से जुलाई तक मैंने माल्त्सेव के साथ मददगार के तौर पर काम किया। पाँच जुलाई को माल्त्सेव ने आखिरी बार एक्सप्रेस गाड़ी चलायी।...

पीछे से आयी गाड़ी में जब हमारा इंजन लगाया गया तो वह चार घण्टे लेट थी। कण्ट्रोलर ने खुद इंजन के पास आकर माल्त्सेव से कहा कि वह जहाँ तक हो सके यह समय घटाने की कोशिश करे। और कुछ नहीं तो देरी तीन घण्टे की ही रह जाये। माल्त्सेव ने पूरी कोशिश करने का वादा किया और हम चल पड़े।

शाम के आठ बजे थे, लेकिन गर्मियां थीं और सूरज अभी भी ऐसे चमक रहा था, मानो दिन ढल नहीं, चढ़ रहा हो। माल्त्सेव ने मुझसे कहा कि मैं बायलर में अधिकतम दाब से केवल आधा ऐटमास्फयर कम दाब बनाये रखूँ।

आधे घण्टे बाद हम खुले मैदानी इलाके में पहुँच गये, जहाँ रास्ते में खास मोड़ और उतार-चढ़ाव नहीं थे। माल्त्सेव ने इंजन की रफ़्तार नब्बे किलोमीटर कर दी, वह उससे नीचे नहीं आने देता था, उल्टे सीधे-सपाट रास्ते पर हल्के मोड़ों पर तो वह

रफ्तार सौ किलोमीटर तक बढ़ा देता था। चढ़ाइयों पर मैं बायलर से अधिकतम काम लेता, खलासी से कहता कि वह ज़रा भी रुके बिना भट्ठी झोंकता जाये।

माल्त्सेव पूरे ज़ोरों से गाड़ी दौड़ाये ले जा रहा था। अब हम क्षितिज पर प्रकट हुई काली घटा की ओर बढ़ रहे थे। हमारी ओर से उस ओर धूप पड़ रही थी, भीतर से उसे उन्मत्त बिजलियाँ चीर रही थीं और हम देख रहे थे कि कैसे बहुत दूर बिजलियाँ तलवारों की तरह धरती का वक्ष बेध रही है। हम उस मौन धरती की ओर बढ़ रहे थे, मानो उसकी रक्षा करने को उतावले हों। माल्त्सेव प्रत्यक्षतः इस दृश्य से अभिभूत हो गया था : सिर खिड़की से बहुत बाहर निकालकर वह आगे देख रहा था, धुएँ, आग और विस्तार की आदी उसकी आँखों में प्रेरणा की चमक थी। वह यह समझ रहा था कि हमारे इंजन का काम और शक्ति तड़ित के काम से तुलनीय है, और शायद यह विचार उसके मन में गर्व की भावना जगा रहा था।

शीघ्र ही हमने धूल का बवण्डर अपनी ओर बढ़ते देखा। मतलब आँधी घटा को भी सीधे हमारी ओर ला रही थी। चारों ओर अँधेरा छा गया। इंजन की लौह देह पर धूल और रेत साँय-साँय करती रगड़ खा रही थी। कुछ दिखाई नहीं देता था, सो मैंने रोशनी के लिये टर्बो-डायनामो चालू किया और रास्ता दिखानेवाली हेडलाइट जला दी। केबिन में घुसती धूल भरी गरम हवा के कारण, जो उसके सामने से बढ़ते इंजन के ज़ोर से दुगुनी तेज लगती थी, भट्ठी के धुएँ और चारों ओर छाये अँधेरे के कारण हमारे लिये साँस लेना मुश्किल हो रहा था। इंजन चीखता हुआ घुटन भरे अँधेरे को चीर रहा था, हेडलाइट की रोशनी से पड़ी दरार में घुस रहा था। रफ़्तार साठ किलोमीटर ही रह गयी। हम मानो सपने में काम कर रहे थे और अपने आगे देखते जा रहे थे।

अचानक मेरे विण्ड स्क्रीन पर एक बड़ी बूँद गिरी और तुरन्त ही सूख गयी—गरम हवा उसे पी गयी। फिर पलकों के पास नीली रोशनी चमकी और मेरे दहल उठे दिल तक पहुँच गयी। मैंने बायलर के इंजेक्टर पम्प का हैंडल पकड़ा, पर इतने में ही दिल का दर्द जाता रहा और मैंने तुरन्त ही माल्त्सेव की ओर नज़र घुमायी। वह सामने देखता हुआ गाड़ी चला रहा था, उसके चेहरे पर कोई शिकन तक नहीं आयी थी।

"क्या था यह?" मैंने खलासी से पूछा।

"बिजली," उसने कहा। "हम पर वार करना चाहती थी, मगर निशाना ज़रा चूक गया।"

माल्त्सेव ने हमारी बात सुन ली।

"कैसी बिजली?" उसने ज़ोर से पूछा।

"अभी गिरी है," खलासी बोला।

"मैंने तो नहीं देखी," माल्त्सेव ने कहा और बाहर की ओर मुँह मोड़ लिया।

"नहीं देखी?" खलासी हैरान हो गया। "मुझे तो लगा था बायलर फट गया—इतनी रोशनी हुई थी, और आप कहते हैं देखी नहीं।"

मेरे मन में भी सन्देह पैदा हुआ कि क्या सचमुच ही बिजली गिरी थी।

"कड़क क्यों नहीं सुनाई दी?" मैंने पूछा।

"वह तो पीछे रह गयी," खलासी ने समझाया। "बिजली पहले चमकती है, फिर कड़कती है। जब तक वह कड़की हम आगे निकल चुके थे, शायद सवारियों ने सुनी हो, वे तो पीछे हैं।"

आगे मूसलाधार बारिश हो रही थी। थोड़ी देर बाद हम बारिश भी पार कर गये। हम शान्त मैदान में पहुँच गये, जिसके ऊपर खाली हो गये शान्त बादल फैले हुए थे।

बिल्कुल अँधेरा छा गया और रात हो गयी। सोंधी मिट्टी की, बरखा में नहाये घास-फूस और अनाज की सुगन्ध आ रही थी।

मैंने देखा कि माल्त्सेव अब गाड़ी उतनी अच्छी तरह नहीं चला रहा। मोड़ों पर इंजन हिचकोले खाता था। रफ़्तार कभी सौ किलोमीटर तक पहुँच जाती और कभी चालीस तक आ जाती। मैंने सोचा, शायद माल्त्सेव बहुत थक गया है, इसलिये उससे कुछ नहीं कहा, हालाँकि इस तरह घटती-बढ़ती रफ़्तार में बायलर में ठीक दाब बनाये रखना बहुत मुश्किल था। खैर, आधे घण्टे बाद हमें पानी लेने के लिये रुकना है, वहाँ माल्त्सेव थोड़ा आराम कर लेगा, मैं सोच रहा था। हम इस बीच चालीस मिनट बचा चुके थे और हमें गाड़ी जहाँ तक ले जानी थी वहाँ पहुँचते-पहुँचते एक घण्टा और बचा लेंगे।

फिर भी माल्त्सेव की थकावट से मैं चिन्तित हो गया और खुद भी ध्यान से आगे का रास्ता और सिग्नल देखने लगा। मेरी तरफ़ मशीन के ऊपर बल्ब जल रहा था। अचानक उसकी रोशनी कम हो गयी, मोमबत्ती जितनी रह गयी। मैंने मुड़कर केबिन में देखा, वहाँ भी सभी बल्बों की रोशनी कम हो गयी थी। मुझे हैरानी हुई कि माल्त्सेव ने चाभी ठकठकाकर इस गड़बड़ की ओर मेरा ध्यान नहीं दिलाया। स्पष्ट था कि टर्बोडायनामो ठीक नहीं चल रहा। मैं उसमें भाप का ज़ोर बढ़ाने लगा, लेकिन वोल्टेज फिर भी नहीं बढ़ रही थी। इस बीच उपकरणों के डायलों और केबिनों की छत पर धुँधला लाल बादल-सा गुज़रा। मैंने बाहर नज़र डाली। हमारे सामने अँधेरे में—यह कहना मुश्किल था कि दूर है या पास—लाल रोशनी पटरियों के बीच झूल रही थी। यह तो मेरी समझ में नहीं आया कि वह क्या बला है, लेकिन इतना मैं फौरन समझ गया कि मुझे क्या करना है।

"माल्त्सेव!" मैं चिल्लाया और इंजन रोकने के संकेत में तीन बार सीटी बजाकर माल्त्सेव की ओर लपका, उसने अपना चेहरा मेरी ओर घुमाया—उसकी आँखों में कोई भाव नहीं था। स्पीडोमीटर साठ किलोमीटर की रफ्तार दिखा रहा था।

"माल्त्सेव!" मैं चिल्लाया। उसने तुरन्त ही पूरी ब्रेक लगा दी।

गाड़ी रुक गयी। हमारे आगे, कोई दस मीटर दूर हमारी लाइन पर इंजन खड़ा था। उसका टेण्डर हमारी ओर था। टेण्डर पर एक आदमी लोहे की छड़ लिये खड़ा

था, छड़ का एक सिरा तपाकर लाल किया हुआ था, हमारी गाड़ी को रोकने के लिये वह यही छड़ हिला रहा था। यह इंजन मालगाड़ी के पीछे लगा हुआ था, जो रास्ते में रुक गयी थी।

मतलब जब मैं टर्बोडायनामो ठीक कर रहा था और बाहर नहीं देख रहा था, उस बीच हम पीली बत्ती पार कर गये थे और लाल बत्ती भी। लेकिन माल्त्सेव ने ये सिग्नल क्यों नहीं देखे?

"कोस्त्या!" माल्त्सेव ने मुझे आवाज़ दी।

मैं उसके पास गया।

"कोस्त्या!.. आगे क्या है?"

मैंने उसे सारी बात बतायी।

"कोस्त्या... अब तुम गाड़ी चलाना। मैं अन्धा हो गया हूँ।"

अगले दिन मैं वापसी गाड़ी अपने स्टेशन पर लाया। डिपो के इंचार्ज को घटना की रिपोर्ट देकर मैं माल्त्सेव का हाथ पकड़कर उसके घर ले चला, माल्त्सेव भारी सदमे की हालत में था, सो वह इंचार्ज के पास नहीं गया। उसके घर से हम अभी थोड़ी दूर ही थे, जब माल्त्सेव ने उसे अकेला छोड़ देने को कहा।

"कैसे छोड़ दूँ?" मैं बोला। "आपको तो दिखायी नहीं देता।"

उसने अपना चेहरा मेरी ओर घुमाया—उसकी आँखें स्पष्ट और सजीव थीं।

"अब मुझे दिखायी दे रहा है, तुम घर जाओ... मुझे सब कुछ दिखायी दे रहा है। वह देखो मेरी बीवी खड़ी मेरा इन्तज़ार कर रही है।"

जिस मकान में माल्त्सेव रहता था उसके गेट के पास सचमुच माल्त्सेव की पत्नी खड़ी थी, उसके काले बाल धूप में चमक रहे थे।

"उसका सिर ढका हुआ है या नंगा है?" मैंने पूछा।

"नंगा है," माल्त्सेव ने जवाब दिया। "कौन अन्धा है—तुम या मैं?"

"ठीक है, तुम्हें दिखायी दे रहा है तो जाओ," मैं बोला और अपनी राह चल दिया।

3

माल्त्सेव के खिलाफ केस दर्ज किया गया, जाँच-पड़ताल होने लगी। जाँच अधिकारी ने मुझे बुलाया और पूछा कि एक्सप्रेस गाड़ी की घटना के बारे में मेरी क्या राय है। मेरे मन में जो था, वही मैंने उससे कहा, यानी यह कि माल्त्सेव का कोई दोष नहीं है।

"वह बिल्कुल पास ही बिजली गिरने से अन्धा हो गया था," मैंने उससे कहा। "उसे भीतरी चोट पहुँची थी, उसकी दृष्टि-तंत्रिकाओं को आघात पहुँचा था... मुझे

पता नहीं ठीक-ठीक कैसे समझाऊँ।"

"मैं आपकी बात समझ रहा हूँ," जाँच अधिकारी ने कहा। "ऐसा होना सम्भव है, लेकिन बात विश्वसनीय नहीं लगती। माल्त्सेव तो कहता है कि उसने बिजली गिरते नहीं देखी।"

"मगर मैंने देखी थी और खलासी ने भी देखी थी।"

"मतलब बिजली माल्त्सेव के बजाय आपके ज़्यादा करीब गिरी थी," जाँच अधिकारी बोला। "तो फिर आपको और खलासी को आघात क्यों नहीं पहुँचा, आप क्यों अन्धे नहीं हुए, इंजन ड्राइवर माल्त्सेव की दृष्टि-तंत्रिका को ही आघात क्यों पहुँचा और वह अन्धा हो गया? क्या ख़्याल है आपका?"

तुरन्त ही कोई जवाब मुझे नहीं सूझा और मैं सोचने लगा।

"माल्त्सेव तो बिजली देख ही नहीं सकता था," मैं बोला।

जाँच अधिकारी आश्चर्यचकित-सा मेरी बात सुनने लगा।

"वह तो एकदम ही अन्धा हो गया था, विद्युत चुम्बकीय तरंग के प्रहार से, जो बिजली के प्रकाश से आगे चलती है। यह प्रकाश तो विद्युत आवेश का परिणाम होता है, बिजली का कारण तो नहीं होता। जब बिजली चमकी तो माल्त्सेव अन्धा हो चुका था, और अन्धा तो प्रकाश देख नहीं सकता।"

"बात तो आपकी दिलचस्प है!" जाँच अधिकारी मुस्कराया। "अगर माल्त्सेव अब भी अन्धा होता तो मैं उसका केस बन्द कर देता। लेकिन आप जानते हैं कि अब उसे सब कुछ दिखायी देता है।"

"हाँ, दिखायी देता," मैंने हामी भरी।

"क्या वह तब सचमुच अन्धा था या नहीं, जब वह बड़ी तेज़ रफ़्तार से एक्सप्रेस गाड़ी को मालगाड़ी के पीछे लिये जा रहा था?"

"था अन्धा!" मैंने यक़ीन दिलाया।

जाँच अधिकारी थोड़ी देर तक मुझे घूरता रहा।

"तो फिर उसने इंजन चलाने का काम आपको क्यों नहीं सौंप दिया, या गाड़ी ही क्यों नहीं रोक दी?"

"पता नहीं," मैंने कहा।

"देखा," वह बोला। "एक भला-चंगा आदमी एक्सप्रेस गाड़ी का इंजन चला रहा है, सैकड़ों लोगों को मौत के मुँह में ले जा रहा है, संयोगवश ही दुर्घटना होते-होते बच जाती है, फिर वह सफाई देता है कि वह अन्धा था। क्या है यह सब?"

"पर वह खुद भी तो मारा जाता!" मैं बोला।

"हो सकता है। मगर एक आदमी के बजाय सैकड़ों लोगों की ज़िन्दगी में मेरी ज़्यादा दिलचस्पी है। कौन जाने, वजह हो, जिससे वह मरना ही चाहता हो?"

"कोई वजह नहीं थी," मैंने कहा।

जाँच अधिकारी अब मेरी ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा था—वह मुझसे ऊब गया था, मानो मैं कोई भोंदू होऊँ।

"आप सब कुछ जानते हैं, सिवाय मुख्य बात के," धीरे-धीरे कुछ सोचते हुए वह बोला। "आप जा सकते हैं।"

जाँच अधिकारी के दफ्तर से निकलकर मैं माल्त्सेव के घर गया। "आपको जब दिखायी देना बन्द हो गया था तो आपने मुझे मदद को क्यों नहीं बुलाया?" मैंने उससे पूछा।

"मगर मैं तो देख रहा था, मुझे तुम्हारी क्या ज़रूरत थी?" उसने जवाब दिया।

"क्या देख रहे थे?"

"सब कुछ : रेल लाइन, सिग्नल, खेतों में उगता गेहूँ, दायीं मशीन का काम—मैं सब कुछ देख रहा था..."

मैं हैरान-परेशान था।

"फिर यह कैसे हुआ कि आप पीली और लाल बत्ती पार कर गये? आप तो दूसरीगाड़ी के बिल्कुल पीछे पहुँच गये थे।"

पहले दर्जे का भूतपूर्व ड्राइवर उदास सोच में पड़ गया और फिर धीरे-धीरे बोलने लगा, मानो मुझे नहीं, अपने आप को जवाब दे रहा हो :

"मैं तो अपने सामने आने वाले संसार को देखने का आदी हूँ, तब भी यही सोच रहा था कि वही सब देख रहा हूँ, लेकिन वह सब मैं अपनी कल्पना में ही देख रहा था। दरअसल तो मैं अन्धा था, मगर मैं यह नहीं जानता था।... जब तुमने इंजन रोकने की सीटी दी और चिल्लाये तो मैं सामने हरा सिग्नल देख रहा था। मैं तो फौरन समझ भी नहीं पाया।"

मैं माल्त्सेव की दशा समझ गया, लेकिन यह नहीं जानता था कि वह जाँच अधिकारी को यह सब क्यों नहीं बता रहा कि अन्धा हो जाने पर भी वह बहुत देर तक संसार को अपनी कल्पना में देखता रहा था और उस कल्पना की वास्तविकता में उसे विश्वास था। मैंने माल्त्सेव से यह पूछा।

"मैंने कहा था," वह बोला।

"तो फिर?"

"उसने कहा : यह तो आपकी कल्पना थी। मैं आपकी कल्पना की तो जाँच कर नहीं सकता, सचमुच में ऐसा था या नहीं। यह तो आपके शब्द हैं, जबकि दुर्घटना जो होते-होते बच गयी वह क्रिया है।"

"वह भी सच्चा है," मैंने कहा।

"हाँ, मैं जानता हूँ। लेकिन मैं भी सच्चा हूँ, मेरा कोई दोष नहीं है," माल्त्सेव बोला। "अब क्या होगा?"

"जेल जाओगे।"

4

माल्त्सेव को जेल की सजा हो गयी। मैं पहले की ही भाँति मददगार था, लेकिन अब दूसरे इंजन ड्राइवर का—फूँक-फूँककर कदम रखनेवाले बूढ़े का। पीली बत्ती से पूरे किलोमीटर पहले ही वह ब्रेक लगा देता और जब तक हम सिग्नल तक पहुँचते तो वह हरा हो जाता और बूढ़ा फिर से गाड़ी आगे घसीटने लगता। यह कोई काम नहीं था, मुझे माल्त्सेव की बहुत याद आती थी।

जाड़ों में मैं बड़े शहर में अपने भाई से मिलने गया, जो यूनीवर्सिटी के हॉस्टल में रहता था। बातों-बातों में भाई ने मुझे बताया कि उनके यहाँ भौतिकविज्ञान की प्रयोगशाला में ऐसा यंत्र है, जिससे आकाश जैसी बिजली जब चाहो चमकायी जा सकती है। मेरे दिमाग में एक अस्पष्ट विचार आया।

घर लौटकर मैंने जाँच अधिकारी को अर्जी लिखी कि वह क़ैदी माल्त्सेव की जाँच करवाये : क्या उस पर बिजली चमकने का प्रभाव पड़ता है। अगर यह पता चले कि उसकी मनोदशा पर या उसकी आँखों पर पास ही अचानक बिजली चमकने का प्रभाव पड़ता है, तो फिर मास्त्सेव के केस पर दुबारा से गौर किया जाना चाहिये।

बहुत दिनों तक जाँच अधिकारी से कोई जवाब नहीं मिला, फिर उसने सूचित किया कि जिले के अभियोक्ता विश्वविद्यालय की प्रयोगशाली में जाँच करवाने पर राजी हो गये हैं।

कुछ दिन बाद जाँच अधिकारी ने सम्मन भेजकर मुझे बुलवाया। मैं उसके यहाँ पहुँचा तो मेरे दिल में धुकधुकी हो रही थी, मुझे विश्वास था कि माल्त्सेव के मामले का अन्त सुखद रहा होगा।

जाँच अधिकारी ने मुझसे बैठने को कहा और फिर बहुत देर तक चुपचाप, उदास नज़रों से कोई कागज़ पढ़ने में लगा रहा। मैं उम्मीद हारने लगा।

"आपने अपने दोस्त का बुरा किया है," आख़िर जाँच अधिकारी बोला।

"क्यों? क्या फैसला नहीं बदला?"

"नहीं, हमने माल्त्सेव को रिहा कर दिया है। आदेश दे दिया है, शायद वह अब घर पहुँच गया हो।"

"धन्यवाद," मैं खड़ा हो गया।

"हम आपको धन्यवाद नहीं देंगे। आपने बुरी सलाह दी। माल्त्सेव फिर से अन्धा हो गया है..."

मैं कुर्सी पर ढह गया, मेरा कलेजा फक हो गया, मुँह सूख गया।

"विशेषज्ञ माल्त्सेव को चेतावनी दिये बिना अँधेरे में यंत्र के पास ले गये," जाँच अधिकारी बताने लगा। "स्विच ऑन किया, बिजली चमकी और तेज कड़क गूँजी। माल्त्सेव इत्मीनान से आगे बढ़ गया, लेकिन अब फिर उसे कुछ दिखायी नहीं

देता—वैज्ञानिक जाँच से इस बात की पुष्टि हो गयी है।"

पानी का घूँट पीकर वह आगे बोला :

"अब वह फिर से संसार को केवल अपनी कल्पना में देखता है।... आप उसके साथी हैं, उसकी मदद करिये।"

"शायद फिर से उसकी नज़र लौट आये," मैंने आशा प्रकट की, "जैसे तब इंजन के हादसे के बाद लौट आयी थी..."

जाँच अधिकारी कुछ देर सोचता रहा।

"मुश्किल है। तब पहला घाव था, अब दूसरा। पुराने घाव पर ही नया घाव पहुँचा है।"

और फिर अपनी उत्तेजना न छिपाते हुए वह उठ खड़ा हुआ और कमरे का चक्कर लगाने लगा।

"सारा कसूर मेरा है।... क्यों मैंने आपकी बात मानी, बुद्धूओं की तरह जाँच की ज़िद की! मैंने आदमी को जोखिम में डाला और यह जोखिम उसके लिये भारी पड़ा।"

"आपका कोई कसूर नहीं है," मैंने उसे सान्त्वना दी। "क्या ज़्यादा अच्छा है—एक आज़ाद अन्धा आदमी या आँखोंवाला मगर बेक़सूर क़ैदी?"

"आदमी को अभागा बनाकर उसे बेक़सूर साबित करना—बहुत भारी क़ीमत है यह!"

"आप तो जाँच का काम करते हैं," मैंने उससे कहा, "आपको आदमी के बारे में सब कुछ मालूम होना चाहिये, वह भी जो वह खुद नहीं जानता।"

"मैं आपकी बात समझ रहा हूँ। आप सही कहते हैं," वह हौले से बोला।

"आप परेशान मत होइये। इस मामले में सच्चाई और तथ्य आदमी के भीतर थे, मगर आप उन्हें बाहर ही ढूँढते रहे थे। लेकिन आपने अपनी यह कमी समझ ली और नेक, शरीफ आदमी की तरह माल्सेव के साथ पेश आये। मैं आपकी इज़्ज़त करता हूँ।"

"मैं भी आपकी इज़्ज़त करता हूँ," जाँच अधिकारी ने कहा।

मैं वहाँ से चला आया। मैं माल्सेव का दोस्त नहीं था। उसने भी कभी मेरी ओर ध्यान नहीं दिया था, मेरी परवाह नहीं की थी। लेकिन मैं दुर्भाग्य के दुख से उसकी रक्षा करना चाहता था। संयोगवश ही उदासीन भाव से आदमी को मटियामट करती अन्धी शक्तियों के ख़िलाफ़ मुझमें गुस्सा उफ़न रहा था। मुझे लगा कि माल्सेव को ही, न कि मुझे या किसी और को डुबोने के पीछे इन शक्तियों का कोई गूढ़, अनबूझ तर्क है। बेशक, मैं यह समझता था कि प्रकृति में हमारी मानवीय, गणितीय अर्थ में तर्क जैसी कोई बात नहीं होती, लेकिन यह देख रहा था कि ऐसी बातें होती हैं, जो शत्रुतापूर्ण, मानव जीवन के लिये घातक परिस्थितियों का अस्तित्व प्रमाणित करती है, और ये घातक शक्तियाँ चुनिन्दा, उदात्त लोगों पर ही प्रहार करती है। मैंने हार न मानने का संकल्प किया, क्योंकि मैं अपने में कुछ ऐसा अनुभव कर रहा था, जो

प्रकृति की बाहरी शक्तियों में और हमारे भाग्य में नहीं हो सकता था। मैं एक मनुष्य के नाते अपनी विशिष्टता अनुभव कर रहा था। और मैंने डटकर मुक़ाबला करने का संकल्प किया, हालाँकि खुद नहीं जानता था कि कैसे करना होगा।

5

अगली गर्मियों में परीक्षा देकर मैं इंजन ड्राइवर बन गया और स्थानीय पैसेंजर गाड़ियाँ ले जानेवाला इंजन चलाने लगा। प्लेटफार्म पर लगी गाड़ी से जोड़ने के लिये जब मैं इंजन लाता तो प्रायः सदा ही माल्सेव को देखता। वह पाँवों के बीच रखी बेंत की मूठ पर हाथ टिकाये बेंच पर बैठा होता। रीती, ज्योतिहीन आँखोंवाला अपना संवेदनशील चेहरा वह इंजन की ओर घुमा देता, बड़ी आतुरता से धुएँ और तेल की गन्ध नथुनों में भरता और इंजन के पिस्टन के चलने की आवाज़ बड़े ध्यान से सुनता। मैं उसे कोई सान्त्वना नहीं दे सकता था, सो मैं चला जाता और वहीं बैठा रह जाता।

गर्मियों के दिन थे। मैं इंजन पर काम कर रहा था। माल्सेव मुझे अक्सर नज़र आता था, प्लेटफार्म पर ही नहीं, सड़क पर भी, जहाँ वह छड़ी से रास्ता टटोलता जा रहा होता। पिछले दिनों वह काफ़ी मुरझा गया था। उसे किसी तरह की तंगी नहीं थी—रेलवे से उसे पेंशन दी जा रही थी, पत्नी काम करती थी, बच्चे उनके थे नहीं, लेकिन खाली बैठने की मजबूरी उसे घुन की तरह अन्दर ही अन्दर खाये जा रही थी। इस स्थायी दुख से उसका शरीर भी दुर्बल हो रहा था। कभी-कभार मैं उससे बातें करता था, पर देखता था कि मुझसे इधर-उधर की बातें करते हुए उसे ऊब होती है और दिलासा की मेरी इन बातों पर कि अन्धा भी पूरा इंसान है, खीझ।

"दफा हो जाओ!" मेरे सद्भावनापूर्ण शब्द सुन चुकने पर वह कहता।

पर मैं भी हठी था। ऐसे ही एक बार जब उसने मुझे दफा हो जाने को कहा तो मैं बोला :

"कल सुबह साढ़े दस बजे मैं गाड़ी ले जा रहा हूँ। अगर चुपके से बैठे रहोगे, तो तुम्हें भी ले चलूँगा।"

माल्सेव मान गया :

"ठीक है, मैं चुपके से बैठूँगा। बस मेरे हाथ में कुछ पकड़ा देना, रिवर्स ही सही : मैं उसे घुमाऊँगा नहीं।"

अगले दिन मैंने उसे इंजन पर बुलाया। ऊपर चढ़ने में उसकी मदद की।

जब हम चल पड़े तो मैंने माल्सेव को इंजन ड्राइवर की सीट पर बिठा दिया। उसका एक हाथ मैंने रिवर्स पर रख दिया और दूसरा ब्रेक के हैण्डल पर। उसके हाथों पर अपने हाथ रख लिये। जैसे ज़रूरत होती वैसे मैं अपने हाथ चलाता और

उसके हाथ भी काम करते। माल्सेव चुप बैठा था, मेरी हर बात मान रहा था। इंजन की गति, चेहरे पर पड़ती हवा और काम का आनन्द पा रहा था। वह एकाग्रचित्त हो गया, अँधे होने का अपना दुख भूल गया और उसका बुझा-बुझा सा चेहरा हर्ष से दमकने लगा। इंजन को महसूस कर पाना उसके लिये परम सुख था।

वापसी पर भी हमने गाड़ी ऐसे ही चलायी : माल्सेव इंजन ड्राइवर की सीट पर बैठा था और मैं उसके बगल में खड़ा था, अपने हाथ मैंने उसके हाथों पर रखे हुए थे। माल्सेव इस तरह काम करने का इतना अभ्यस्त हो गया था कि मेरे हाथ का ज़रा-सा इशारा पाते ही वह ठीक-ठीक समझ जाता था कि क्या करना है। पुराना बेजोड़ इंजन ड्राइवर नज़र खो बैठने की अपनी कमी पर पार पाने और दूसरी इन्द्रियों से संसार को अनुभव करने का प्रयत्न कर रहा था, ताकि काम कर सके, अपने जीने का औचित्य सिद्ध कर सके।

जहाँ रास्ता सीधा-सपाट होता वहाँ तो मैं माल्सेव के पास से हट ही जाता और मददगार की साइड से आगे देखता।

हमारा सफ़र पूरा हो रहा था, गाड़ी ठीक टाइम से चल रही थी। लेकिन आख़िरी हिस्से पर आगे सिग्नल की पीली बत्ती जल रही थी। मैंने पहले से ही रफ्तार कम करना ठीक नहीं समझा और पिस्टन का वाल्व खुला रखकर ही आगे बढ़ रहा था। माल्सेव रिवर्स के हैण्डल पर बायाँ हाथ रखे शान्त बैठा था; मन में एक अव्यक्त आशा छिपाये मैं अपने गुरु की ओर देख रहा था...

"वाल्व बन्द कर दो!" अचानक माल्सेव बोला।

मैं चुप रहा, मेरा कलेजा ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था।

तब माल्सेव ने अपनी सीट से उठकर रेगुलेटर की ओर हाथ बढ़ाया और वाल्व बन्द कर दिया।

"आगे पीली बत्ती दिख रही है," उसने कहा और ब्रेक का हैण्डल अपनी ओर खींचा।

"कहीं यह तुम्हारी कल्पना तो नहीं कि तुम पीली बत्ती देख रहे हो?" मैंने माल्सेव से कहा।

उसने अपना चेहरा मेरी ओर घुमाया और रो पड़ा। जवाब में मैंने उसे चूम लिया।

"अब तुम ही आख़िर तक गाड़ी चलाओ : अब तुम सारा संसार देख रहे हो!"

वह मेरी मदद के बिना ही गाड़ी स्टेशन तक ले गया। काम के बाद मैं माल्सेव के साथ उसके घर गया। सारी शाम और सारी रात हम इकट्ठे बैठे रहे।

मुझे उसे अकेले छोड़ते हुए डर लग रहा था, जैसे कि वह मेरा सगा बेटा हो, जिसे मैं हमारे इस अनुपम और क्रूर संसार की आकस्मिक और शत्रुतापूर्ण शक्तियों के सामने असहाय नहीं छोड़ना चाहता था।

लोहे की बुढ़िया

पेड़ पर पत्तियाँ शोर कर रही थीं; संसार में बहती जा रही हवा उनमें गा रही थी। नन्हा बालक येगोर पेड़ तले बैठा था और पत्तियों की आवाज़, उनके मर्मरित शब्द सुन रहा था।

येगोर यह जानना चाहता था कि हवा के इन शब्दों का अर्थ क्या है। वे उससे क्या कह रहे हैं, सो वह हवा की ओर मुँह करके पूछता था :

"तू कौन है? क्या कह रही है मुझसे?"

हवा चुप हो जाती, वह मानों बालक की बात सुनने लगती, और फिर नये सिरे से पत्तियाँ हिलाते और पुराने शब्द दोहराते हुए धीरे-धीरे बुदबुदाने लगती।

"तू कौन है? एक बार फिर येगोर ने पूछा—उसे कोई नज़र नहीं आ रहा था।

किसी ने उसे उत्तर नहीं दिया। हवा चली गयी और पत्तियाँ सो गयीं। येगोर थोड़ी देर इन्तज़ार करता रहा कि अब क्या होगा। उसने देखा कि साँझ घिर रही है। डूबते सूरज की पीली किरणों में पेड़ की पीली पत्तियाँ चमकीं और जीवन का उल्लास कम हो गया। उसे अब घर जाना था, ब्यालू करके अँधेरे में सोना था। येगोर को सोना अच्छा नहीं लगता था, उसे तो लगातार, बिना अन्तराल के जीना अच्छा लगता था ताकि वह सब कुछ देख सके, जो उसके बिना जीता है। उसे अफ़सोस होता था कि रात को आँखें बन्द करनी पड़ती हैं और तब आसमान पर तारे अकेले ही चमकते हैं, वह उनके साथ नहीं होता।

उसने गुबरैले को उठा लिया, जो घास पर चलता हुआ अपने घर रात काटने जा रहा था, और उसके छोटे से निश्चल मुख और काली, दयालु आँखों को देखा, जो येगोर को और साथ ही सारे संसार को निहार रही थीं।

"तू कौन है?" येगोर ने गुबरैले से पूछा।

गुबरैले ने कोई उत्तर नहीं दिया, पर येगोर समझ रहा था कि गुबरैला कोई ऐसी बात जानता है, जो येगोर नहीं जानता, बस वह इतना छोटा-सा होने का बहाना कर रहा है, वह जान-बूझकर गुबरैला बन गया है और चुप है, जबकि खुद तो गुबरैला नहीं कोई और ही है—पता नहीं कौन।

"तू झूठ बोलता है!" येगोर ने कहा और गुबरैले को पलटकर उसका पेट ऊपर कर दिया, यह देखने के लिये वह कौन है।

गुबरैला चुप था; वह अपना पूरा ज़ोर लगाकर गुस्से से टाँगें हिला रहा था, मनुष्य

से अपने जीवन की रक्षा कर रहा था और उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं कर रहा था। येगोर को गुबरैले के अद्भुत साहस पर आश्चर्य हुआ, उसे यह गुबरैला प्यारा लगने लगा, उसका यह विश्वास और भी पक्का हो गया कि यह गुबरैला नहीं कोई दूसरा, बहुत बड़ा और बुद्धिमान प्राणी है।

"तू झूठ बोल रहा है कि तू गुबरैला है!" गुबरैले के मुँह को बिल्कुल पास से तल्लीनता से देखते हुए येगोर ने फुसफुसाकर कहा। "तू बन मत, मैं यह जानकर रहूँगा कि तू है कौन। अच्छा है, तुरन्त ही अपना भेद बता दे।"

गुबरैले ने अपनी छहों टाँगें एक साथ येगोर की ओर उछालीं। तब येगोर ने उससे आगे बहस नहीं की।

"ठीक है, जब मैं तेरे हाथ आऊँगा, तो मैं भी तुझे कुछ नहीं बताऊँगा।" और उसने गुबरैले को हवा में छोड़ दिया ताकि वह अपने काम से उड़ जाये।

गुबरैला पहले तो उड़ा, फिर ज़मीन पर बैठा और पैदल चल दिया। येगोर अचानक उसके बिना उदास हो गया। वह समझ गया कि वह फिर कभी उस गुबरैले को नहीं देख पायेगा और अगर कभी वह दिख भी गया तो उसे पहचान नहीं पायेगा, क्योंकि गाँव में बहुत से दूसरे गुबरैले हैं। यह गुबरैला कहीं जीता रहेगा, फिर मर जायेगा, और कोई उसे याद नहीं करेगा, अकेला येगोर ही इस अनजान गुबरैले को याद रखेगा।

पेड़ से सूखी पत्ती गिरी। कभी वह ज़मीन में से पेड़ पर उगी थी, बड़ी देर तक आसमान को देखती रही थी और अब आसमान से ज़मीन पर वापस आ गयी थी, जैसे लम्बे सफर के बाद कोई घर लौटा हो। बिल्कुल पतला और बदरंग लिसलिसा केंचुआ रेंगता हुआ पत्ती पर चढ़ गया।

"यह कौन है?" केंचुए को देखकर येगोर उलझन में पड़ गया। "इसके न आँखें हैं, न सिर, यह क्या सोचता है?" येगोर केंचुए को उठाकर अपने घर ले चला।

साँझ पूरी तरह घिर आयी। घरों में बत्तियाँ जल गयी थीं, सब लोग इकट्ठे जीने के लिये खेतों से लौट आये थे, क्योंकि चारों ओर अँधेरा छा गया था।

घर पर माँ ने येगोर को ब्यालू दिया, फिर सोने को कहा और सिर पर भी रजाई ओढ़ा दी ताकि उसे सोते हुए डर न लगे और वे डरावनी आवाज़ें न सुनायी दें जो कभी-कभी रात को खेतों, जंगलों और खड्डों से आती हैं। येगोर रजाई तले निश्चल लेटा हुआ था। फिर उसने अपनी बायीं मुट्ठी खोली, जिसमें वह सारा समय केंचुए को पकड़े रहा था।

"तू कौन है?" केंचुए को मुँह के पास लाकर येगोर ने पूछा।

केंचुआ ऊँघ रहा था, येगोर की खुली मुट्ठी में वह हिल-डुल नहीं रहा था। उससे नदी, ताजी मिट्टी और घास की गन्ध आ रही थी; वह छोटा-सा, साफ़ और शान्त था, शायद अभी बच्चा ही था, या शायद दुबला बूढ़ा।

"कैसे तू जीता है?" येगोर कह रहा था। "तुझे जीना अच्छा लगता है कि नहीं?"

केंचुए ने हथेली पर कुण्डली मार ली—वह महसूस कर रहा था कि रात हो गयी है, और आराम पाना चाहता था। पर येगोर अभी सोना नहीं चाहता था : वह अभी जीना और किसी के साथ खेलना चाहता था, वह चाहता था कि तुरन्त ही सुबह हो जाये और वह बिस्तर से निकल सके। लेकिन रात अभी शुरू ही हुई थी, लम्बी रात—वह सारी सोते-सोते नहीं कटेगी; अभी सो भी जाये तो पौ फटने से पहले जाग जायेगा; वह तो डरावना समय होता है, सब सो रहे होते हैं—लोग भी, घास-पात थी, जागा आदमी सारे संसार में अकेला होता है—कोई उसे देखता नहीं, किसी को उसकी सुध नहीं होती।

केंचुआ येगोर के हाथ पर लेटा हुआ था।

"चल, मैं तेरा रूप धर लेता हूँ, तू मेरा धर ले," येगोर ने केंचुए से कहा। "मुझे तब पता चल जायेगा तू कौन है, तू मुझ जैसा हो जायेगा, तू आदमी होगा, तेरे लिये अच्छा रहेगा।"

केंचुआ राजी नहीं हो रहा था; वह शायद सो गया था, यह सोचे बिना कि येगोर कौन है।

"मैं हमेशा येगोर बना-बना तंग आ गया हूँ, मैं कोई और भी बनना चाहता हूँ। जाग जा रे, केंचुए। चल, बातें करें—तू मेरी सोच, मैं तेरी सोचूँगा..."

बेटे की आवाज़ सुनकर माँ उसके पास आयी। वह अभी सोयी नहीं थी, घर के वे काम पूरे कर रही थी, जो दिन में नहीं कर पायी थी।

"सोता क्यों नहीं रे? बुदबुदाता जा रहा, मसखरा कहीं का," माँ ने कहा और येगोर के पाँवों तले रजाई दबा दी। "सो जा। नहीं तो, पता है रात को खेत में अँधेरे में लोहे की बुढ़िया आती है, जो सोते नहीं उन्हें अपने साथ ले जाती है।"

"माँ, वह कौन है?" येगोर ने पूछा।

"वह लोहे की है, दिखायी नहीं देती, अँधेरे में रहती है, लोगों के दिल में डर पैदा करती है और उनकी जान निकल जाती है।..."

"वह है कौन?"

"कौन जाने, बेटा। तू सो जा," माँ ने कहा। "डर मत उससे, वह शायद कोई नहीं, बस ग़रीब बुढ़िया है।"

"वह रहती कहाँ है?"

"वह खड्डों में भटकती फिरती है, जड़ी ढूँढ़ती है, सूखी हड्डियाँ चूसती है, और जब कोई मरता है तो वह खुश होती है—वह सारी दुनिया में अकेले रहना चाहती है, जीती जा रही है, जीती जा रही है, उस दिन के इन्तज़ार में, जब सब लोग मर जायेंगे और अकेली लोहे की बुढ़िया ही रह जायेगी। अच्छा, सो जा अब, वह घरों में नहीं आती, मैं दरवाज़ा बन्द कर देती हूँ..."

माँ बेटे से परे चली गयी। येगोर ने केंचुए को तकिये तले छिपा दिया ताकि वह नरम और गरम जगह पर सोये और डरे नहीं।

"माँ, तुम कौन हो?" येगोर ने पूछा।

पर माँ ने कोई जवाब नहीं दिया। वह सोच रही थी कि येगोर थोड़ी देर और बातें करके सो जायेगा, उसकी पलकें तो भारी हो ही रही होंगी।

"अच्छा, मैं कौन हूँ?" येगोर सोच रहा था। "कोई न कोई तो मैं हूँ ही। यह तो हो नहीं सकता कि मैं कोई भी न होऊँ!"

घर में खामोशी छा गयी। माँ लेट गयी, पिताजी बहुत पहले से सो रहे थे। येगोर कान लगाकर सुनने लगा। लचीली टहनियों से बुनी अहाते की बाड़ कभी-कभार चरमरा उठती थी, बाड़ के पास उगता मेपल का पेड़ उसे हिलाता था। येगोर ने देखा था कि बिल्कुल शान्त मौसम होने पर भी मेपल थोड़ा-थोड़ा डोलता रहता है, मानो जल्दी से जल्दी बड़ा होने को या अपनी जगह छोड़कर कहीं चल देने को आतुर हो, इसीलिए बाड़ हमेशा चरमराती रहती है, परेशानी की शिकायत करती है, शायद, पेड़ बनकर जीने में बड़ी ऊब होती होगी—वह सारी उम्र एक ही जगह जो रहता है।

"माँ," येगोर ने हौले से कहा और रजाई के नीचे से सिर निकाला। "मेपल क्या है?"

पर माँ सो गयी थी, किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। वह झुटपुटे में टकटकी लगाकर देखने लगा। बाजरे के खेत की ओर खुलनेवाली खिड़की रात के धुँधले प्रकाश में चमक रही थी, जैसे कि खिड़की के बाहर गहरा निश्चल जल हो। येगोर बिस्तर पर बैठ गया, यह सोचने लगा कि अँधेरे खेत में क्या हो रहा है और कौन वहाँ पोटली में रोटी बाँधे लम्बे रास्ते पर चलता जा रहा है। कोई तो सूने रास्ते पर जा रहा होगा और किसी बात से नहीं डरता होगा। कौन है वह?

दूर कहीं किसी ने लम्बी आह भरी, फिर कराहा और चुप हो गया। येगोर ने खिड़की पर नज़रें गड़ा दीं; अँधेरे खेत की रोशनी से खिड़की का काँच अभी भी चमक रहा था, पर कराहती आवाज़ फिर से आयी—पता नहीं दूर कहीं कोई घोड़ागाड़ी जा रही थी या फिर लोहे की बुढ़िया खड्ड में चली जा रही थी और इस बात पर दुखी हो रही थी कि दुनिया में लोग जी रहे हैं, जन्म ले रहे हैं और वह दिन आ ही नहीं रहा जब वह अकेली रह जायेगी। "जाकर अपने आप सब कुछ पता करता हूँ," येगोर ने फैसला किया। "क्या हो रहा है रात में, कौन है वह बुढ़िया?"

उसने पतलून पहनी और नंगे पाँव ही बाहर चला गया। मेपल का पेड़ रवाना होने की तैयारी में टहनियाँ हिला रहा था, बर्डक झाड़ के बड़े-बड़े पत्ते बाड़ से रगड़ खा रहे थे और कोठरी में गाय जुगाली कर रही थी। अहाते में कोई भी सो नहीं रहा था।

आसमान पर निर्मल तारे चमक रहे थे। तारे इतने सारे थे कि वे पास ही लगते थे—इसलिये रात को तारों तले वैसे ही डर नहीं लग रहा था, जैसे दिन को जंगली फूलों के बीच नहीं लगता।

येगोर बाजरे का खेत पार कर गया, ऊँघते, बुदबुदाते सूरजमुखियों के पास से गुज़रा और पुराने रास्ते से खड्ड की ओर चल दिया।

यह खड्ड भी पुराना था, यहाँ बाढ़ का पानी नहीं बहता था, सो वह झाड़-झंखाड़ से भर गया था। बूढ़े-बुढ़ियाँ यहाँ लचीली टहनियाँ जमा करते थे, जिनसे जाड़ों में टोकरियाँ बुनते थे।

झाड़ियों के झुरमुट पार करके येगोर खड्ड के तले पर पहुँच गया। उसने देखा कि यहाँ ऊपर ज़मीन से ज़्यादा अँधेरा है और यहाँ हवा भी नहीं चल रही—कोई पत्ती, कोई तिनका नहीं हिल-डुल रहा था। येगोर को डर लगने लगा।

"तारो-तारो, मुझे देखो," येगोर बुदबुदाया, "मुझे अकेले में डर लगता है।"

लेकिन खड्ड में से केवल तीन तारे दिख रहे थे और वे भी बहुत ऊपर कहीं टिमटिमा रहे थे और मानो दूर जाते हुए अँधेरे में विलीन हो रहे थे।

येगोर ने घास को छुआ, कंकड़ देखा, फिर बर्डक को छुआ—वह बिल्कुल वैसा ही था जैसा उनके अहाते में, और उसका डर दूर हो गया : कोई बात नहीं, ये सब भी तो यहाँ रहते हैं, डरते नहीं, मैं भी इनके साथ रहूँगा। जल्दी ही उसे खड्ड की ढलान पर एक छोटी-सी गुफा दिखी, जो वहाँ से चिकनी मिट्टी निकालने के लिये बनायी गयी थी। वह वहाँ चढ़ गया। वह एक झपकी लेना चाहता था—सारा दिन जीते और चलते वह थक गया था।

"जब लोहे की बुढ़िया इधर से गुजरेगी तो मैं उसे आवाज़ दूँगा," येगोर ने अपने आप से कहा और रात की ठण्डक में ज़मीन पर सिमटकर आँखें मूँद लीं।

गहरा सन्नाटा छा गया, सब कुछ सुन्न हो गया, आसमान की चादर ने सारे तारे छिपा दिये, घास-पात बेजान-से होकर लटक गये।

धरती की इस निचान में एक मनहूस आवाज गूँजी, जैसे कि सभी मृतकों ने खेद की आह भरी हो। येगोर ने नींद में यह दर्द भरी आवाज़ सुनकर फौरन आँखें खोल दीं। उसके पास ही इंसान की काली देह झुकी-सी हुई थी, अँधेरी रात में वह बहुत बड़ी और अस्पष्ट लग रही थी—ऐसी कि चाहे तो अभी स्पष्ट हो जाये और चाहे तो तुरन्त विलीन हो जाये।

"तू कौन है?" येगोर ने पूछा। "तू बुढ़िया है?"

"बुढ़िया हूँ," बुढ़िया ने कहा।

"तू लोहे की है? मैं लोहे की बुढ़िया को ढूँढ रहा हूँ।"

"किसलिये ढूँढ रहा है?" लोहे की बुढ़िया ने पूछा।

"मैं तुझे देखना चाहता हूँ—तू कौन है, तू किसलिये है?" येगोर ने कहा।

"मरने लगेगा, तब बताऊँगी," बुढ़िया की आवाज़ आयी।

"बता दे, मैं मर जाऊँगा," येगोर बोला और उसने चिकनी मिट्टी का ढेला हाथ में ले लिया ताकि उसे बुढ़िया की आँखों में झोंक दे और उस पर काबू पा ले।

"आ जा मेरे पास, कान में बताती हूँ," बुढ़िया पहली बार हिली-डुली और फिर से वह जानी-पहचानी मनहूस आवाज़ आयी—सरसराते लोहे की या सूखी हड्डियों के चरमराने की। "आ जा मेरे पास, मैं तुझे सब कुछ बता दूँगी और तब तू मर जायेगा, नहीं तो तू अभी छोटा-सा है, अभी बहुत जियेगा, मुझे तेरे मरने का बड़ा लम्बा इन्तज़ार करना पड़ेगा। रहम कर मुझ पर, मैं बूढ़ी हूँ।"

"तू है कौन, बता दे," येगोर ने फिर से पूछा। "मुझसे मत डर, मैं तुझसे नहीं डरता।"

बुढ़िया येगोर पर झुककर उसके पास आने लगी। लड़के ने अपनी गुफा में पीठ ज़मीन से सटा ली और उसकी ओर झुक रही लोहे की बुढ़िया को घूरने लगा। जब बुढ़िया की कमर दोहरी हो गयी, वह उसके पास आ गयी और उनके बीच अँधेरा कम रह गया तो येगोर चिल्लाया :

"मैं जानता हूँ, मैं तुझे जानता हूँ! नहीं ज़रूरत मुझे तेरी, मैं तुझे मार डालूँगा!" उसने बुढ़िया के मुँह पर चिकनी मिट्टी का ढेला दे मारा, खुद डर के मारे ज़मीन में मुँह छिपा लिया।

औंधे मुँह सुन्न पड़े-पड़े भी येगोर ने एक बार और लोहे की बुढ़िया की आवाज़ सुनी :

"तू मुझे नहीं जानता, तू मेरी शक्ल नहीं देख पाया। पर जब तक तू ज़िन्दा रहेगा मैं तेरी मौत का इन्तज़ार करती रहूँगी, तुझे मौत के मुँह में धकेलती रहूँगी, क्योंकि तू मुझसे नहीं डरता।"

"थोड़ा-थोड़ा तो डरता हूँ, पर बाद में अपने मन पर काबू पा लूँगा और नहीं डरूँगा," येगोर ने सोचा और बेसुध हो गया।

जानी-पहचानी गरमाहट से उसकी सुध लौटी, बड़े-बड़े कोमल हाथ उसे उठाये लिये जा रहे थे। उसने पूछा :

"तू कौन है? तू बुढ़िया है?"

"अरे तू कौन है?" माँ ने उससे पूछा।

येगोर ने आँखें खोलीं और फौरन ही फिर से भींच लीं : सारा गाँव, उनके अहाते का मेपल और सारी धरती—सब कुछ धूप से चमचमा रहा था। येगोर ने फिर से आँखें खोलीं और माँ की गर्दन देखी, जिसके पास उसका सिर टिका हुआ था।

"खड्ड में क्यों भाग गया था रे?" माँ ने पूछा। "तड़के से तुझे ढूँढते फिर रहे हैं। पिता जी हैरान-परेशान खेत में काम करने गये हैं।"

येगोर ने बताया कि वह खड्ड में लोहे की बुढ़िया से लड़ा था, बस उसकी शक्ल नहीं देख पाया, क्योंकि उस पर चिकनी मिट्टी का ढेला दे मारा था।

माँ कुछ सोचने लग गयी, फिर उसने येगोर को नीचे उतार दिया और उसे ऐसे देखा जैसे कि वह पराया हो।

"अपने पाँव चलो, बाँके-बहादुर!.. तुझे सपना आया था।"

"नहीं, मैंने सचमुच देखा था," येगोर बोला। "लोहे की बुढ़िया होती हैं।"

"हो सकता है, होती हों," माँ ने कहा और बेटे का हाथ पकड़कर घर ले चली।

"माँ, वह कौन है?"

"मुझे नहीं पता, मैंने तो बस सुना है, खुद नहीं देखा। लोग कहते हैं कि यह हमारा भाग्य है, या हमारा दुख घूमता-फिरता है। बड़ा होगा सब जान लेगा।"

"भाग्य," येगोर ने दुहराया—वह इस शब्द का अर्थ नहीं जानता था। "थोड़ा और बड़ा हो जाऊँ, तब लोहे की बुढ़िया को पकड़ लूँगा..."

"पकड़ लेना, बेटे, ज़रूर पकड़ लेना," माँ ने कहा। "अभी आलू छीलके तुझे तल देती हूँ।"

"हाँ, तल दो," येगोर को यह मंजूर था। "मुझे भूख लग आयी है, बुढ़िया तो ताक़तवार होती हैं। उसने मुझे थका डाला है।"

वे घर में घुसे। ड्योढ़ी में फ़र्श पर कलवाला केंचुआ रेंग रहा था, येगोर के बिस्तर से अपने घर लौट रहा था। "जा-जा, गूँगे!" येगोर नाराज हो गया। "देखो तो, बताया ही नहीं कौन है। कोई बात नहीं, मैं सब कुछ जान लूँगा बाद में। बुढ़िया का भी पता लगा लूँगा—खुद ही लोहे का बुड्ढा बन जाऊँगा!"

येगोर ड्योढ़ी में थम गया और सोचने लगा : "नहीं, मैं तो झूठमूठ में लोहे का बनूँगा, उस बुढ़िया को डराने के लिये ताकि वह मर जाये। फिर मैं लोहे का नहीं रहूँगा—मैं नहीं बनना चाहता लोहे का, मैं माँ का बेटा बनूँगा।"

वापसी

गार्ड्स कैप्टन अलेक्सेई इवानोव लाम टूटने पर फौज छोड़कर जा रहा था। लड़ाई के इन सारे बरसों में वह जिस टुकड़ी में था, वहाँ इवानोव को विदाई दी गयी–भारी दिल से, आदर-सम्मान और प्यार दर्शाते हुए, जैसे कि होना ही चाहिये, जाम उठाये गये और गीत-गाने गाये गये। इवानोवके क़रीबी दोस्त और साथी उसे स्टेशन पर छोड़ने आये और वहाँ आखिरी विदाई लेकर लौट गये। इवानोव स्टेशन पर अकेला रह गया। उसकी गाड़ी कई घण्टे लेट थी, जब ये लम्बे घण्टे बीत गये तो वह और लेट हो गयी। पतझड़ की ठण्डी रात घिर आयी। स्टेशन लड़ाई में तबाह हो गया था, रात काटने की कोई जगह नहीं थी, सो इवानोव अपनी टुकड़ी की ओर जाती एक लारी में बैठकर वहाँ लौट गया। दूसरे दिन इवानोव के साथियों ने फिर से उसे विदा किया; फिर से गाने गाये और अमर दोस्ती दिखाते हुए गले मिले, लेकिन इस बार उनका भाव-प्रदर्शन संक्षिप्त ही था और यह सब क़रीबी दोस्तों के बीच ही हुआ।

इसके बाद इवानोव दूसरी बार स्टेशन को रवाना हुआ। स्टेशन पर उसे पता चला कि कल की ट्रेन अभी तक आयी नहीं, सो इवानोव एक बार फिर रात काटने अपनी टुकड़ी में लौट सकता था। पर तीसरी बार विदा लेना, साथियों को परेशान करना ठीक नहीं था, सो इवानोव सूने प्लेटफार्म पर अकेला रह गया।।

स्टेशन के आउटर सिग्नल के पास लाइनमैन की गुमटी बची रह गयी थी। उस गुमटी के पास बेंच पर एक औरत बण्डी पहने और सिर पर गरम स्कार्फ बाँधे बैठी थी। वह कल भी अपने सामान के पास वहीं बैठी हुई थी, अब भी गाड़ी का इन्तज़ार करती बैठी हुई थी। कल अपनी टुकड़ी में रात काटने के लिये जाते समय इवानोव को ख़्याल आया था, क्यों न इस अकेली बैठी औरत को भी बुला लिया जाये–वह नर्सों के कमरे में रात काट लेगी, सारी रात यहाँ क्यों ठिठुरती रहे। पर वह सोच ही रहा था कि लारी चल पड़ी और इवानोव उसे भूल गया।

अब वह पहले की ही भाँति उसी स्थान पर निश्चल बैठी थी। इस स्थिरता और धीरज का अर्थ था नारी हृदय की अनुरक्ति और अडिगता, कम से कम अपनी चीज़ों और अपने घर के लिये, जहाँ यह औरत शायद लौट रही थी। इवानोव उसके पास गया : हो सकता वह भी साथ हो जाने पर इतनी नहीं ऊबेगी।

औरत ने इवानोव की ओर सिर घुमाया और वह उसे पहचान गया। वह लड़की थी, उसे सब "हम्मामवाले की बेटी माशा" कहते थे, क्योंकि कभी उसने खुद अपना

यह परिचय दिया था। उसका बाप हम्माम में काम करता था। लड़ाई के दिनों में इवानोव ने कुछेक बार उसे देखा था : एक फौजी हवाई अड्डे के भोजनालय में वह काम करती थी।

उनके चारों ओर पतझड़ की प्रकृति में उदासी व्याप्त थी। जिस ट्रेन को माशा और इवानोव को यहाँ से उनके घरों को ले जाना था वह धुँधले विस्तार में न जाने कहाँ खोयी हुई थी। इंसान के दिल को अगर कोई चीज़ सुकून दे सकती थी, बहला सकती थी तो वह दूसरे इंसान का दिल ही था।

इवानोव माशा से बातें करने लगा और उसका जी खुश हो गया। माशा देखने में प्यारी थी और मन की भोली। उसके बड़े-बड़े मेहनती हाथों और उसकी जवान सुघड़ देह से भलाई का अहसास होता था। वह भी अपने घर लौट रही थी और यह सोच रही थी कि फौज के बिना अपनी नयी ज़िन्दगी में कैसे जियेगी। वह अपनी फौजी सहेलियों की आदी हो गयी थी और पायलटों की भी, जो उसे बहन की तरह प्यार करते थे, उसे चाकलेट दिया करते थे और "बड़ी माशा" कहते थे, क्योंकि जितना बड़ा उसका डील-डौल था, उतना ही बड़ा उसका दिल था, सारे भाइयों के लिये उसमें एक-सा प्यार था, किसी के लिये अलग नहीं। अब माशा अटपटा और अजीब महसूस कर रही थी, उसे तो रिश्तेदारों के पास घर लौटते हुए डर भी लग रहा था–वह उनकी आदी जो नहीं थी।

इवानोव और माशा को लग रहा था जैसे कि फ़ौज के बिना वे अनाथ हो गये हैं। पर इवानोव ज़्यादा देर तक उदास और दुखी नहीं रह सकता था। वह माशा के पास सरक आया और उससे अनुरोध करने लगा कि वह एक फ़ौजी साथी के नाते उसे गाल चूमने दे।

मैं बस हल्का-सा चुम्मा लूँगा," इवानोव ने कहा, "नहीं तो, देखिये न, गाड़ी लेट हो रही है, उसका इन्तज़ार करते ऊब जायेंगे।"

"बस इसीलिये कि गाड़ी लेट हो रही है?" माशा ने पूछा और गौर से इवानोव की ओर देखा।

भूतपूर्व कैप्टन देखने में पैंतीसेक साल का लगता था। उसके चेहरे की गोरी चमड़ी धूप और हवाओं से कत्थई पड़ गयी थी। उसकी सुरमई आँखें कुछ-कुछ संकोच के साथ माशा की ओर देख रही थीं, वह सीधे-सीधे, पर फिर भी अदब और विनम्रता से बात कर रहा था। अधेड़ पुरुष जैसी उसकी खोखली, फटी सी आवाज़, उसका सँवलाया रूखा चेहरा और उस पर एक साथ ही शक्ति और निस्सहायता का भाव–यह सब माशा को अच्छा लगा।

इवानोव ने फिर से अपना अनुरोध दोहराया।

"मैं हल्का-सा ही चुम्मा लूँगा, धीरे से... कल्पना कीजिये, माशा, कि मैं आपका चाचा हूँ।"

"मैंने कल्पना कर ली है... कि आप मेरे बाप हैं, चाचा नहीं।"

"अच्छा... तो आपकी इजाज़त है..."

"बाप क्या बेटी से पूछता है?" माशा हँस पड़ी।

बाद में इवानोव ने मन ही मन माना था कि माशा के बालों से पतझड़ में गिरे पत्तों की गन्ध आती थी और वह उन्हें कभी नहीं भुला पाया था।...

रात को गाड़ी आयी और इवानोव व माशा को उनके देस को ले चली। दो दिन, दो रात तक सफ़र में उनका साथ रहा, तीसरे दिन माशा उस शहर पहुँच गयी, जहाँ बीस साल पहले वह पैदा हुई थी। माशा ने डिब्बे में अपना सारा सामान जमा किया और इवानोव से कहा कि वह बोरा ठीक से उसकी पीठ पर लाद दे, पर इवानोव ने बोरा अपनी पीठ पर लाद लिया और माशा के पीछे डिब्बे से उतर आया—हालाँकि उसके घर तक अभी एक दिन से ज़्यादा का सफ़र बाकी था।

इवानोव का ऐसा ध्यान देखकर माशा को आश्चर्य हुआ और अच्छा भी लगा। वह तुरन्त ही उस शहर में अकेली रहते डर रही थी, जहाँ वह पैदा हुई थी और लड़ाई शुरू होने तक रही थी, मगर जो अब उसके लिये पराया हो गया था।

माशा के माँ-बाप को जर्मन यहाँ से खदेड़ ले गये थे और वे न जाने कहाँ मारे गये थे। अब माशा के शहर में उसकी एक मौसेरी बहन और दो मौसियाँ रह गयी थीं, मगर उनसे उसका कोई लगाव नहीं था।

इवानोव ने रेलवे कमाण्डेण्ट से इस शहर में रुकने का पर्चा बनवा लिया और माशा के साथ ठहर गया। वैसे तो उसे जल्दी से जल्दी घर जाना चाहिये था—जहाँ उसकी पत्नी और दो बच्चे उसकी बाट जोह रहे थे। चार साल से उसने उन्हें देखा नहीं था। पर इवानोव मिलन के इस सुखद और व्याकुलता भरे क्षण को टाल रहा था। वह खुद नहीं जानता था कि ऐसा क्यों कर रहा है—शायद इसलिये कि थोड़ी देर और आज़ाद रहना चाहता था।

माशा नहीं जानती थी कि इवानोव शादीशुदा है या नहीं और लाजवश उसने पूछा भी नहीं। उसके उदार हृदय ने इवानोव पर भरोसा किया, बस और कुछ उसने नहीं सोचा।

दो दिन बाद इवानोव आगे अपने घर को चला। माशा उसे स्टेशन पर छोड़ने आयी। इवानोव ने आदतन उसे चूमा और सदा उसे याद रखने का वायदा किया।

जवाब में माशा मुस्करा दी और बोली :

"क्या ज़रूरत है मुझे सदा याद रखने की? कोई ज़रूरत नहीं, यों भी आप भूल ही जायेंगे... मैं आपसे कुछ नहीं माँग रही, मुझे भूल जाना।"

"मेरी प्यारी माशा! कहाँ थी तुम पहले, क्यों नहीं बहुत पहले हमारी मुलाकात हुई?"

"लड़ाई से पहले मैं स्कूल में पढ़ती थी और बहुत पहले तो मैं इस दुनिया में थी ही नहीं।"

गाड़ी आयी और उन्होंने विदा ली। इवानोव चला गया और उसने यह नहीं देखा कि माशा जब अकेली रह गयी तो रो पड़ी थी, क्योंकि वह किसी को नहीं भुला सकती थी, न सहेली को, न किसी साथी को, जिससे उसकी किस्मत ने उसे एक बार ही मिलाया हो।

इवानोव डिब्बे की खिड़की में से उस शहर के मकानों को देख रहा था, जिसे वह शायद ही फिर कभी अपनी ज़िन्दगी में देखेगा और सोच रहा था कि ऐसे ही मकान में, पर दूसरे शहर में उसकी बीवी ल्यूबा बेटे पेत्या और बेटी नास्त्या के साथ रहती है और वे उसकी राह देख रहे हैं; अपनी टुकड़ी से ही उसने पत्नी को तार भेज दिया था कि वह फौरन घर को रवाना हो रहा है और जल्दी से जल्दी उसे और बच्चों को गले लगाना चाहता है।

इवानोव की पत्नी लगातार तीन दिन तक पश्चिम दिशा से आने वाली सभी गाड़ियाँ देखने स्टेशन पर जाती रही थी। वह काम से छुट्टी लेती थी, अपना कोटा पूरा नहीं कर पाती थी और रात को खुशी के मारे उसे नींद नहीं आती थी, वह सुनती रहती थी कि दीवार घड़ी का पेण्डुलम कैसे धीरे-धीरे, उदासीन चलता रहता है। चौथे दिन उसने दिन की गाड़ी देखने बच्चों को भेजा और रात की गाड़ी देखने खुद गयी।

इवानोव छठे दिन आया। उसका बेटा पेत्या स्टेशन पर उसे लिवाने आया हुआ था। पेत्या को बारहवाँ लग चुका था और इवानोव तुरन्त ही नहीं पहचान पाया कि अपनी उम्र से बड़ा दिखता यह किशोर उसका बेटा ही है। पिता ने देखा कि पेत्या नाटा-दुबला बालक है, पर सिर उसका बड़ा है और माथा ऊँचा और चेहरा शान्त है, मानो वह रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की चिन्ताओं का अभ्यस्त हो, उसकी छोटी-छोटी कत्थई आँखें खिन्न और नाराज़ सी दुनिया को देख रही थीं, जैसे कि चारों ओर उन्हें गड़बड़ी नज़र आती हो। पेत्या ने जूते-कपड़े सलीके से पहने हुए थे—उसके जूते घिसे हुए थे पर अभी पहने जा सकते थे, पैंट और जैकेट पुराने थे, पिता के कपड़ों से बनाये गये थे, पर ठीक-ठाक थे—जहाँ टाँके लगाने की ज़रूरत थी वहाँ टाँके लगे हुए थे और जहाँ पैबन्द की वहाँ पैबन्द। पेत्या अपने हुलिये से छोटा-सा, गरीब, पर मेहनती मर्द लगता था। पिता ने हैरान होकर ठण्डी साँस भरी।

"आप पिता जी हैं क्या?" इवानोव ने जब उसे बाँहों में भरकर उठाया और चूमा तो पेत्या ने पूछा। "हाँ, लगता है पिता जी ही हैं।"

"हाँ... नमस्ते, बेटे।"

"नमस्ते... इतनी देर क्यों लगा दी आने में? हम कब से इन्तज़ार कर रहे थे।"

"अरे बेटा, यह गाड़ी धीरे चल रही थी।... माँ और नास्त्या कैसी हैं—भली-चंगी हैं?"

"ठीक हैं," पेत्या बोला। "कितने पदक मिले तुम्हें?"

"दो पदक, बेटे, तीन तमगे हैं।"

"माँ और हम तो सोच रहे थे कि तुम्हारी छाती पर जगह नहीं बची होगी। माँ को भी दो तमगे मिले हैं, काम के लिये... सामान इतना कम क्यों है—बस एक झोला!"

"मेरे लिये इतना ही बहुत है।"

"जिसके पास सन्दूक होता है उसके लिये लड़ना मुश्किल होता है?" बेटे ने पूछा।

"हाँ, मुश्किल होता है," बाप ने कहा। "एक झोला लेकर लड़का आसान होता है। लड़ाई में किसी के पास सन्दूक नहीं होता।"

"मैं यही सोच रहा था। मैं तो सन्दूक में अपनी चीज़ें सम्भालकर रखता, झोले में तो टूट जायें, मुड़-तुड़ जायें।"

उसने पिता का झोला उठाया और घर ले चला। बाप उसके पीछे-पीछे चला।

घर के दरवाज़े पर माँ मिली : उसने फिर से काम से छुट्टी ले ली थी, उसका दिल मानो कह रहा था कि आज पति आ जायेगा। भट्ठे से वह घर चली आयी थी, बाद में स्टेशन जाने की सोचकर। उसे डर था कि कहीं सेम्योन येव्सेयेविच तो घर नहीं आ गया : वह कभी-कभी दिन में चला आता है—आकर पाँच साल की नास्त्या और पेत्या के साथ बैठा रहता है। वैसे तो यह कभी खाली हाथ नहीं आता, हमेशा बच्चों के लिये कुछ न कुछ ले आता है—टाफियाँ, या चीनी, या मैदे की पावरोटी, या फिर किसी चीज़ का कूपन। इन दो सालों में, जब से वे एक दूसरे को जानते हैं सेम्योन येव्सेयेविच ल्यूबा से भलाई से पेश आया है, बच्चों से भी वह सगे बाप जैसा बर्ताव करता रहा है, कई तो सगे बाप भी बच्चों का इतना ख़्याल नहीं रखते। पर आज ल्यूबा नहीं चाहती थी कि उसका पति सेम्योन येव्सेयेविच को देखे। उसने रसोई और कमरे की सफ़ाई की, घर साफ़-सुथरा होना चाहिये, उसमें कुछ भी फालतू नहीं होना चाहिये। बाद में, कल या परसों वह खुद पति को सारी सच्चाई बता देगी। सौभाग्यवश, आज सेम्योन येव्सेयेविच नहीं आया था।

इवानोव ने पत्नी के पास आकर उसे छाती से लगाया और ऐसे ही खड़ा रहा—अपनी प्यारी जान की जानी-पहचानी और बिसर गयी गरमाहट महसूस करता रहा।

नन्ही नास्त्या घर से बाहर निकल आयी। उसे पिता की याद नहीं थी, उसे देखकर उसकी टाँग पर दोनों हाथ रखकर वह उसे परे धकेलने लगी, और फिर रो पड़ी। पेत्या माँ-बाप के बगल में चुपचाप खड़ा था—बाप का झोला कन्धे पर उठाये; थोड़ी देर रुककर वह बोला :

"अब बस भी करो, नास्त्या रो रही है, वह तो नासमझ है।"

पिता ने माँ से अलग होकर नास्त्या को गोद में उठा लिया—वह डर के मारे रोती जा रही थी।

"नास्त्या!" पेत्या ने उसे पुकारा। "बस कर—कहा न! यह हमारे पिताजी हैं, हमारे सगे हैं!..

घर में मुँह-हाथ धोकर वह मेज के पास बैठ गया। उसने टाँगें फैलायीं और आँखें मूँद लीं, मन में उठता चैन और सन्तोष अनुभव किया। युद्ध बीत गया था। इन बरसों में उसके पाँवों ने हज़ारों मील पार किये थे, उसके चेहरे पर थकावट की झुर्रियाँ पड़ गयी थीं।

इधर वह बैठा हुआ था, उधर उसका सारा परिवार उसके स्वागत में खाना पकाने में लगा हुआ था। इवानोव बारी-बारी घर की एक-एक चीज़ देख रहा था—दीवार घड़ी, बर्तनों की अल्मारी, दीवार पर टँगा थर्मामीटर, कुर्सियाँ, खिड़की पर फूलों के गमले... अरसे तक यह सब उसके बिना यहाँ रहे थे, उसकी याद में उदास होते रहे थे। अब वह लौट आया था और उन्हें देख रहा था, सगे-सम्बन्धियों की तरह एक-एक से मिल रहा था। वह अपने घर की गन्ध महसूस कर रहा था—पुरानी लकड़ी की, उसके बच्चों के बदन की गरमाहट की, अँगीठी की। यह गन्ध चार साल पहले जैसी ही थी, बदली नहीं थी। ऐसी गन्ध इवानोव ने और कहीं भी महसूस नहीं की थी, हालाँकि लड़ाई के बरसों में वह कितने ही देशों के सैकड़ों मकानों में गया था। वहाँ की गन्ध दूसरी थी, अपने घर की गन्ध उनमें नहीं थी। इवानोव को माशा की, उसके बालों की गन्ध याद आयी; पर उनमें जंगल में झड़े पत्तों की गन्ध थी, अनजान रास्ते की गन्ध थी, घर की नहीं। क्या कर रही होगी वह इस वक़्त? भगवान उसका भला करे...

इवानोव देख रहा था कि पेत्या ही घर में सबसे ज़्यादा भागदौड़ कर रहा था। खुद तो वह काम कर ही रहा था, साथ-साथ माँ और नास्त्या से भी कहता जा रहा था—क्या करें और क्या न करें और कैसे ठीक-ठीक करना चाहिये। नास्त्या चुपचाप उसका कहना मान रही थी। वह अब बाप से डर नहीं रही थी। उसका चेहरा सजीव और एकाग्रचित्त था, ऐसे बच्चे का चेहरा, जो जीवन में सब कुछ सचमुच में करता है। दिल उसका भला था, क्योंकि वह पेत्या की बातों का बुरा नहीं मान रही थी।

"नास्त्या, प्याले में से आलू के छिलके फेंक दे, मुझे बर्तन चाहिये..."

नास्त्या ने प्याला खाली करके धो दिया। उधर माँ जल्दी-जल्दी 'पाई' तैयार कर रही थी भट्ठी में पकाने के लिये, जिसमें पेत्या ने आग जला दी थी।

"जल्दी करो, माँ, जल्दी!" पेत्या हुक्म चला रहा था। "देख रही हो, भट्ठी तप गयी।"

"अभी, बेटा, अभी," माँ आज्ञाकारी बच्ची की तरह जवाब दे रही थी। "बस किशमिश और डाल दूँ। तुम्हारे पिता जी ने तो पता नहीं कब से नहीं खायी होगी। मैंने कब से सम्भालकर रखी हुई है।"

"खायी है पिताजी ने," पेत्या बोला। "हमारे फौजियों को किशमिश भी मिलती

है। देखो तो हमारे फौजियों के गाल कैसे लाल हैं, उन्हें माल मिलता है... नास्त्या, तू क्या बैठ गयी? चल आलू छील, खाने के लिये बनाना होगा... खाली 'पाई' से टब्बर का पेट थोड़े ही भरेगा!"

इधर माँ 'पाई' तैयार कर रही थी, उधर पेत्या ने लोहे की पतीली में श्ची पकने के लिये भट्ठी में रख दी, ताकि आग बेकार न जाये और भट्ठी में आग को भी उसने झाड़ सुना दी :

"क्या चारों ओर फैलाकर जल रही है। एकसार जल।... अरी ओ नास्त्या, यह तूने क्या छपटियाँ भट्ठी में जैसे-तैसे डाल दीं, जैसे मैंने सिखाया था वैसे लगाकर क्यों नहीं रखी? फिर तू आलू का छिलका मोटा उतार रही है, छिलके के साथ गूदा क्यों उतार रही है—खाना बेकार कर रही है। कितनी बार समझाया है तुझे, आख़िरी बार कह रहा हूँ, अगली बार चपत खायेगी।"

"बेटा, क्यों नास्त्या के पीछे पड़ा है," माँ ने दबी आवाज़ में कहा। "ज़रा-सी तो बच्ची है। वह क्या इतने आलू छील सकती है, सो भी ऐसे कि कहीं गूदा न उतरे।... तुम्हारे पिताजी लौटे हैं और तुम गुस्सा दिखा रहे हो।"

"मैं गुस्सा नहीं दिखा रहा, काम की बात कह रहा हूँ।... पिताजी को खिलाना-पिलाना चाहिये, वह लड़ाई से लौटे हैं और तुम लोग यहाँ सब कुछ जाया कर रहे हो।... आलू के छिलके में ही साल भर में कितना खाना बर्बाद हो गया है।.. अगर हमने सूअर पाला होता तो आलू का छिलका खाकर ही साल भर में इतना तगड़ा हो जाता कि नुमायश में दिखा सकते थे और वहाँ हमें तमगा मिलता... देखा क्या होता! तुम लोग तो कुछ समझते ही नहीं हो!"

इवानोव नहीं जानता था उसका बेटा ऐसा है। वह अब बैठा उसकी सूझ-बूझ पर हैरान हो रहा था। पर नन्ही, भोली नास्त्या उसे ज़्यादा अच्छी लग रही थी, वह भी अपने नन्हे हाथों से घर का काम कर रही थी और उसके ये हाथ काम करने के अभ्यस्त हो चुके थे। मतलब, अरसे से उन्हें घर का काम करने की आदत डाल दी गयी हैं

"ल्यूबा," इवानोव की पत्नी से पूछा। "तुम क्या मुझे कुछ नहीं बता रही हो—यहाँ मेरे बिना कैसे रहती रही हो, तुम्हारी सेहत कैसी है, काम पर क्या करती हो?"

ल्यूबा नयी दुल्हन की तरह पति से शरमा रही थी, वह उसकी आदी नहीं रही थी। पति जब उससे कुछ कहता तो उसके गालों पर लाली दौड़ जाती और चेहरे पर लाज और डर का भाव आ जाता, जो इवानोव को इतना अच्छा लगता था।

"सब ठीक है, अल्योशा... हम ठीक रहे हैं। बच्चे ज़्यादा बीमार नहीं पड़े, उन्हें पालती रही... बस, यही बुरी बात है कि सिर्फ रात को ही उनके साथ होती हूँ। मैं भट्ठे पर काम करती हूँ, प्रेस मशीन चलाने का, बड़ी दूर जाना पड़ता है। शुरू में मामूली मज़दूरी करती थी, फिर काम सीख लिया। काम तो अच्छा है, बस बच्चे

सारा दिन अकेले रहते हैं... देखो न कितने बड़े हो गये हैं। सब कुछ अपने आप कर लेते हैं, बिल्कुल बड़ों की तरह," ल्यूबा ने हौले से कहा, "पता नहीं, यह अच्छी बात है या नहीं, मैं नहीं जानती..."

"देखी जायेगी... अब हम इकट्ठे रहेंगे, देख लेंगे बाद में क्या अच्छा है, क्या नहीं।"

"अब तुम आ गये हो, तो सब कुछ बेहतर होगा, मेरी तो अकेली की समझ में नहीं आता था—क्या ठीक है, क्या नहीं, मैं डरती रहती थी। अब तुम ही सोचना कैसे बच्चों को पालें-पोसें।"

इवानोव ने उठकर कमरे का चक्कर लगाया।

"हाँ, तो कुल जमा ठीक ही रहे तुम लोग।"

"हाँ, अल्योशा, ठीक ही रहे, सब कुछ सह लिया। बस तुम्हारी याद बहुत आती थी, और डर लगता था कि तुम कभी नहीं लौटोगे, दूसरों की तरह लड़ाई में मारे जाओगे..."

वह रो पड़ी, उसके आँसू तैयार 'पाई' पर टपकने लगे।

नास्त्या ने माँ की टाँग बाँहों में भर ली, उसकी स्कर्ट से मुँह सटा लिया और भौंहें सिकोड़कर बाप पर नज़र डाली।

बाप उस पर झुका।

"क्या बात है, नास्त्या?.. क्या हुआ? मुझसे नाराज़ हो गयी?"

उसने बेटी को गोद में उठाकर उसके सिर पर हाथ फेरा।

"क्या बात है, बिटिया? तू तो मुझे भूल ही गयी, बिल्कुल छोटी-सी थी जब मैं लड़ाई पर गया था..."

नास्त्या भी पिता के कन्धे पर सिर रखकर रोने लगी।

"क्या बात है, बिटिया?"

"माँ रो रही है, मैं भी रोऊँगी।"

भट्ठी के पास किंकर्त्तव्यविमूढ़ खड़ा पेत्या नाराज़ था।

"'क्या हो गया तुम सबको?.. रोने की सूझी है! भट्ठी में ताप बेकार जा रहा है।... लाओ, अम्मा, पत्तर दो, नहीं तो भट्ठी ठण्डी पड़ जायेगी।"

पेत्या ने भट्ठी में से पतीली निकाली, कोयले चलाये, उधर माँ ने मानो पेत्या से डरते हुए जल्दी-जल्दी 'पाई' के दोनों पत्तर भट्ठी में लगा दिये।

इवानोव को अपना घर अभी अजीब लग रहा था और वह उसे समझ नहीं पा रहा था। वही पत्नी थी, वही चेहरा—बरसों की थकावट की छाप लिये, मगर फिर भी सलोना और लजीला। बच्चे भी वही थे—उसकी अपनी औलाद, हाँ, लड़ाई के इन बरसों में वे बड़े हो गये थे, जैसा कि होना ही चाहिये था। मगर कोई बात थी, जिसकी वजह से इवानोव घर लौटने की खुशी पूरे दिल से नहीं महसूस कर पा रहा था—शायद वह घर की ज़िन्दगी को इस हद तक भूल गया था कि अपने सबसे करीबी, सगे

लोगों को भी तुरन्त नहीं समझ पा रहा था। वह पेत्या को, अपने पहलौटे बेटे को देख रहा था, उसे माँ और बहन पर हुक्म चलाते सुन रहा था, उसका गम्भीर, चिन्तित चेहरा देख रहा था और यह मानते हुए शर्मिन्दा हो रहा था कि इस बालक के लिये उसके मन में वात्सल्य नहीं उमड़ रहा। बेटे की ओर अपने हृदय की उदासीनता पर इसलिये और भी अधिक शर्मिन्दा था क्योंकि समझ रहा था : उसे दूसरों से अधिक प्यार की ज़रूरत है, उसे देखकर तरस आता है। इवानोव अभी ठीक-ठीक यह नहीं जानता था कि उसके बिना उसके परिवार का जीवन कैसा रहा था और वह अभी यह साफ़-साफ़ समझ नहीं पा रहा था कि पेत्या का चरित्र ऐसा क्यों बना है।

अपने परिवार के साथ बैठकर खाना खाते हुए इवानोव अपना कर्तव्य समझ गया। उसे जल्दी से जल्दी काम शुरू करना चाहिये, पैसे कमाने चाहिये, बच्चों का ठीक लालन-पालन करने में पत्नी की मदद करनी चाहिये--तब धीरे-धीरे सब कुछ ठीक हो जायेगा और पेत्या लड़कों के साथ खेले-कूदेगा, किताबें पढ़ेगा, न कि भट्ठी के पास खड़ा हुक्म चलायेगा।

पेत्या ने सबसे कम खाना खाया, पर 'पाई' का जो चूरा मेज पर बिखरा था वह सारा हथेली पर बटोरकर फाँक लिया।

"क्या बात है, पेत्या," पिता ने उससे कहा, "चूरा खा रहे हो, पर 'पाई' का अपना टुकड़ा अधूरा छोड़ दिया... खा लो! माँ और काट देगी।"

"खाने को तो सारा खा लो," पेत्या ने मुँह फुलाकर कहा, "मेरे लिये बहुत हो गया।"

"पेत्या डरता है कि अगर वह ज़्यादा खायेगा तो नास्त्या भी उसकी देखा-देखी ज़्यादा खाने लगेगी," माँ ने भोलेपन से समझाया, "इसे दुख होता है।"

"तुम्हें तो किसी चीज़ का दुख नहीं होता," पेत्या ने उदासीन स्वर में कहा, "मैं चाहता हूँ तुम्हारे हिस्से ज़्यादा आये।"

माँ-बाप ने एक दूसरे की ओर देखा और बेटे के इन शब्दों से उनका कलेजा सिहर उठा।

"तू क्यों नहीं खा रही ठीक से?" पिता ने नन्ही नास्त्या से पूछा। "तू क्या पेत्या की देखा-देखी करती है? ठीक से खा नहीं तो छोटी ही रह जायेगी..."

"मैं बड़ी हो गयी हूँ," नास्त्या ने कहा।

उसने 'पाई' का छोटा टुकड़ा खा लिया और दूसरा, बड़ा टुकड़ा परे सरकाकर उसे नेपकिन से ढक दिया।

"ऐसा क्यों कर रही है? माँ ने पूछा। "ला, मक्खन लगा दूँ?"

"नहीं, मेरा पेट भर गया..."

"अच्छा, ऐसे ही खा ले...'पाई' परे क्यों सरका दी?"

"सेम्योन अंकल जो आयेंगे। मैंने उनके लिये रखा है। तुम्हारा हिस्सा थोड़े ही है, मैंने नहीं खाया। मैं सिरहाने तले रख देती हूँ नहीं तो ठण्डा हो जायेगा..."

नास्त्या ने कुर्सी से उतरकर नेपकिन में लिपटा 'पाई' का टुकड़ा उठाया और पलंग पर ले जाकर सिरहाने तले रख दिया।

माँ को याद आया कि पहली मई को जब उसने 'पाई' बनायी थी तो उसने भी उसे सिरहानों से ढँका था ताकि सेम्योन येव्सेयेविच के आने तक ठण्डी न हो जाये।

"कौन है यह सेम्योन अंकल?" इवानोव ने पत्नी से पूछा।

ल्यूबा की समझ में नहीं आ रहा था क्या जवाब दे, वह बोली :

"पता नहीं मुझे कौन है... है एक, बच्चों से मिलने आता रहता है, उसके बीवी-बच्चों को जर्मनों ने मार डाला है, हमारे बच्चों से उसे लगाव हो गया है, उनके साथ खेलने आता रहता है।"

"क्या मतलब, खेलने आता है?" इवानोव हैरान हुआ। "क्या खेल खेलते हैं यहाँ? कितनी उम्र है उसकी?"

पेत्या ने जल्दी से माँ और पिता पर नज़र डाली; माँ ने जवाब में कुछ नहीं कहा, बस उदास नज़रों से नास्त्या को देखती रही, पिता के चेहरे पर कटु मुस्कान आयी, कुर्सी से उठकर उसने सिगरेट सुलगायी।

"कहाँ हैं वो खिलौने, जिनसे यह सेम्योन अंकल तुम्हारे साथ खेलता है?" पिता ने पेत्या से पूछा।

नास्त्या कुर्सी से उतरी, अल्मारी के पास दूसरी कुर्सी पर चढ़ गयी, अल्मारी के ऊपर रखी क़िताबें उठायीं और पिता के पास ले आयी।

"ये रही खिलौना-क़िताबें," नास्त्या ने पिता से कहा, "सेम्योन अंकल मुझे पढ़कर सुनाते हैं : देखो कैसा मजेदार भालू है, खिलौना भी है और किताब भी..."

इवानोव बेटी की दो क़िताबें देखने लगा।

पेत्या को याद आया कि भट्ठी की चिमनी बन्द कर देनी चाहिये, नहीं तो सारा ताप घर से बाहर निकल जायेगा।

चिमनी बन्द करके उसने पिता से कहा :

"वह उम्र में तुमसे बड़ा है।... हमारा भला करता है, रहने दो उसे..."

खिड़की से बाहर नज़र डालने पर पेत्या ने पाया कि आसमान पर बादल वैसे नहीं है, जैसे सितम्बर में होने चाहिये।

"यह कैसे सीसाई बादल आ गये हैं," पेत्या बोला, "ये तो, लगता है, हिम बरसायेंगे! या सुबह ही जाड़ा आ धमकेगा? क्या करेंगे तब हम : अभी तो आलू खोदा नहीं है, घर पर तो कुछ जमा है नहीं... क्या मुसीबत है!"

इवानोव अपने बेटे को देख रहा था, उसकी बातें सुन रहा था और उसके सामने अपनी भीरुता महसूस कर रहा था। वह पत्नी से पूछना चाहता था कि यह सेम्योन

है कौन, जो दो साल से उसके घर में आ रहा है और किससे मिलने वह आता है–नास्त्या से या उसकी सुदर्शना पत्नी से। मगर पेत्या माँ से घर के काम-काज की बातें करने लगा :

"माँ, लाओ, कल के ज़रिये डबलरोटी के कूपन दे दो। और दो मिट्टी के तेल के कूपन भी, कल आख़िरी दिन है, लकड़ी का कोयला भी लाना है।... और नास्त्या से कह दो, कल किसी को हमारे अहाते में पानी लेने न आने दे। कितना पानी निकाल लेते हैं कुएँ से; जाड़ा आ रहा है, पानी नीचे हो जायेगा, हमारे पास इतना लम्बा रस्सा नहीं है..."

ये बातें कहते हुए पेत्या भट्टी के आस-पास सफाई करता जा रहा था, बर्तन और रसोई का दूसरा सामान करीने से रखता जा रहा था। फिर उसने भट्टी में से श्ची की पतीली निकाली।

"थोड़ी 'पाई' चख ली, अब डबलरोटी के साथ गोश्तवाली श्ची खायेंगे," पेत्या ने सबसे कहा। "पिताजी, कल सुबह-सुबह जिला सोवियत और फौजी दफ्तर हो आना, जल्दी से नाम लिखवा लोगे, जल्दी राशन के कूपन मिलने लगेंगे।"

"हाँ, जाऊँगा," पिता ने आज्ञाकारी बालक की तरह कहा।

"ज़रूर हो आना, भूलना नहीं। कहीं सुबह सोते रह जाओ और भूल जाओ।"

"नहीं, नहीं भूलूँगा," पिता ने वायदा किया।

युद्ध के पश्चात अपना पहला इकट्ठा भोजन परिवार ने चुपचाप किया। पेत्या तक इत्मीनान से बैठा हुआ था, मानो माँ-बाप और बच्चे डर रहे हों कि अनजाने में कहीं किसी बात से इकट्ठे बैठे परिवार के सुख को भंग न कर दें।

फिर इवानोव ने पत्नी से पूछा :

"कपड़े-लत्तों का क्या हाल है, ल्यूबा–सब घिस गये होंगे?"

"पुराने ही पहनते रहे हैं, अब नये लायेंगे," ल्यूबा मुस्करायी। "बच्चों के पास जो थे उनकी मरम्मत करती रही, फिर तुम्हारे कपड़ों से उनके लिये सी दिये। पैसे तो थे नहीं, बच्चों को कुछ तो पहनाना था।..."

"ठीक किया," इवानोव ने कहा, "बच्चों के लिये कोई कंजूसी मत बरतना।"

"मैंने कोई कंजूसी नहीं की, अपना ओवरकोट भी बेच दिया, जो तुमने मेरे लिये खरीदा था, अब बण्डी पहनती हूँ!"

"बण्डी लम्बाई में छोटी है, उसमें माँ को ठण्ड लग जायेगी," पेत्या बोला। "मैं हम्माम में खलासी की नौकरी कर लूँगा, तनख्वाह मिलेगी, माँ को ओवरकोट ले दूँगा।..."

"तेरे बिना काम चला लेंगे, तेरी तनखाह के बिना," बाप ने कहा।

खाने के बाद नास्त्या ने नाक पर बड़ा चश्मा चढ़ा लिया और खिड़की के पास बैठकर माँ के दस्तानों की मरम्मत करने लगी।

पेत्या ने बहन को देखा और उसे डाँटने लगा :

"यह क्या शरारत है, तूने सेम्योन अंकल का चश्मा क्यों पहन लिया?"

"मैं चश्मे से नहीं देख रही, उसके ऊपर से देख रही हूँ।"

"अजी हाँ! मैं सब देख रहा हूँ! आँखें खराब कर लेगी, अन्धी हो जायेगी, फिर सारी उम्र दूसरों की मोहताज होकर रहेगी। उतार दे चश्मा फौरन–कहा न मैंने। और ये दस्ताने छोड़ दे, अम्मा खुद ठीक कर लेगी, या मैं काम से निबटकर कर दूँगा। चल, कापी उठा और लिख–भूल ही गयी काम करना!"

नास्त्या ने दस्ताना परे रख दिया, अल्मारी में से कापी और होल्डर निकाला। पेत्या सन्तुष्ट था कि सब कुछ ढंग से हो रहा है, माँ की बण्डी पहनकर वह अहाते में चला गया–कल के लिये लकड़ियाँ चीरने। लकड़ियाँ चीरकर पेत्या उन्हें रात को घर के अन्दर ले आता था और भट्टी के पीछे रख देता था, ताकि वे रात भर में सूख जायें और फिर अच्छी तरह जलें।

शाम को माँ ने जल्दी ही खाना लगा दिया। वह चाहती थी कि बच्चे जल्दी सो जायें और वह पति के साथ थोड़ी देर अकेली बैठ सके, कुछ बातें कर सके, लेकिन बच्चे खाने के बाद बड़ी देर तक नहीं सोये। नास्त्या बड़ी देर तक रजाई तले से पिता को देखती रही, पेत्या अपने बिस्तर में करवटें बदलता, कुछ बुदबुदाता रहा। आखिर रात हो गयी और नास्त्या ने अपनी देखते-देखते थक गयी आँखें मूँद लीं और पेत्या भी खर्राटे लेने लगा।

पेत्या कच्ची, सतर्क नींद सोता था : उसे सदा यह डर लगा रहता था कि रात को कहीं कुछ हो न जाये, चोर घुस आयें या माँ किवाड़ का कुण्डा लगाना भूल जाये और रात का दरवाजा खुल जाये, घर की सारी गर्माहट बाहर निकल जाये। आज पेत्या माँ-बाप के चिन्तित स्वर सुनकर जागा, रसोई के बगलवाले कमरे में वे बातें कर रहे थे। समय कितना था–आधी रात हो गयी थी या सुबह होनेवाली थी–यह वह नहीं जानता था, पर माँ-बाप नहीं सो रहे थे।

"शोर मत मचाओ, अल्योशा, बच्चे जाग जायेंगे," माँ दबे स्वर में कह रही थी। "उसे मत कोसो, वह भला आदमी है, उसे तुम्हारे बच्चों से लगाव है..."

"नहीं चाहिये हमें उसका लगाव," पिता ने कहा। "मुझे क्या खुद अपने बच्चों से कम लगाव है? देखो तो, पराये बच्चों से उसे लगाव हो गया है! मैंने तुम्हें सर्टिफिकेट भेजा था, तुम खुद भी काम करती थीं, क्या ज़रूरत पड़ी थी तुम्हें इस सेम्योन की? खून गरम है क्या अभी... वाह री, ल्यूबा! मैं तो वहाँ तुम्हारे बारे में कुछ और ही सोचता था। तुमने यहाँ भोंदू बना दिया..."

पिता चुप हो गया, फिर पाइप सुलगाने के लिये दियासलाई उसने जलायी।

"यह तुम क्या कह रहे हो, अल्योशा!" माँ चिल्ला उठी। "मैंने बच्चों को पाला-पोसा है, कभी खास बीमार नहीं पड़े, बदन भी भरा-पूरा है..."

"तो क्या हुआ!" पिता बोला। "दूसरों के चार-चार बच्चे थे, वे भी लिये और बच्चे उनके हमारे बच्चों से बुरे नहीं निकले हैं। तुम्हारा यह पेत्या तो पता नहीं कैसा इंसान बन गया है—बुड्ढे बाबों जैसी बातें करता है, पढ़ना-लिखना तो भूल ही गया होगा।"

पेत्या ने अपने बिस्तर में लम्बी आह भरी और झूठमूठ में खर्राटे भरने लगा ताकि आगे सुन सके। "कोई बात नहीं," उसने सोचा, "मैं बाबा ही सही, तुम्हारी तो वहाँ मौज थी, पका-पकाया माल हड़पते थे!"

"पर उसने ज़िन्दगी की असली मुश्किलें जान ली हैं!" माँ ने कहा। "पढ़ाई में भी पीछे नहीं रहेगा।"

"कौन है यह तुम्हारा सेम्योन? मुझे बातों में मत बहकाओ," पिता नाराज हो रहा था।

"वह भला आदमी है।"

"तुम उससे प्यार करती हो क्या?"

"अल्योशा, मैं तुम्हारे बच्चों की माँ हूँ..."

"आगे बोलो! सीधे-सीधे जवाब दो!"

"मैं तुमसे प्यार करती हूँ, अल्योशा। मैं माँ हूँ, औरत तो मैं बहुत पहले थी, सिर्फ तुम्हारे साथ, भूल भी गयी कब की बात है..."

पिता चुपचाप बैठा अँधेरे में पाइप पी रहा था।

"मैं तुम्हारे बिछोह में तड़पती रही हूँ, अल्योशा... हाँ, बच्चे मेरे साथ थे, पर वे तुम्हारी जगह थोड़े ही ले सकते हैं, मैं इन सारे, इतने लम्बे बरसों तक तुम्हारी ही बाट जोहती रही हूँ। सुबह जागने तक की इच्छा नहीं होती थी।"

"करता क्या है वह?"

"हमारे भट्ठे में सप्लाई दफ़्तर में काम करता है।"

"हुँ, मतलब चोर है।"

"वह चोर नहीं है। मैं नहीं जानती... उसका सारा परिवार मोगिल्योव में मारा गया, तीन बच्चे थे, बेटी का ब्याह पक्का हो चुका था।"

"क्या फ़र्क पड़ता है, उसे दूसरा तैयार परिवार मिल गया है, औरत भी बूढ़ी नहीं है, देखने में चंगी है, फिर से वह चैन से जी रहा है।"

माँ ने कोई जवाब नहीं दिया। खामोशी छा गयी, पर शीघ्र ही पेत्या ने माँ के रोने की आवाज़ सुनी।

"वह बच्चों को तुम्हारे बारे में बताता था, अल्योशा," माँ बोली और पेत्या उसकी आवाज़ से समझ गया कि उसकी आँखों में बड़े-बड़े आँसू थमे हुए हैं। "वह बच्चों को बताता था कैसे तुम वहाँ हमारी खातिर लड़ रहे हो, मुसीबतें झेल रहे हो... बच्चे उससे पूछते थे : क्यों और वह कहता था : क्योंकि तुम भले इंसान हो..."

पिता हँस पड़ा, पाइप में से उसने राख झाड़ी।

"वाह, कैसा है तुम्हारा सेम्योन-मेम्योन! मुझे कभी देखा नहीं, पर मेरी तारीफ़ें करता है। क्या बन्दा है!"

"उसने तुम्हें देखा नहीं। वह जान बूझकर अपने मन से बातें गढ़ता था ताकि बच्चे तुम्हें भूले नहीं, अपने पिता से उनका प्यार बना रहे।"

"पर किसलिए? जल्दी से जल्दी तुम्हें हासिल करने के लिये? तुम मुझे यह बताओ उसे चाहिए क्या था?"

शायद वह नेकदिल है, अल्योशा, इसलिये ऐसा है। और क्या बात हो सकती है?"

"निरी बेवक़ूफ़ हो तुम, ल्यूबा। माफ़ करना, अपना मतलब साधे बिना कोई कुछ नहीं करता।"

"सेम्योन येव्सेविच अक्सर बच्चों के लिये कुछ न कुछ लाता था, हर बार लाता था, कभी टाफियाँ, कभी मैदा, कभी चीनी, अभी थोड़े दिन पहले नास्त्या के लिये गरम जूते लाया था, पर वे काम नहीं आये, साइज़ छोटा निकला। उसे हमसे कुछ नहीं चाहिए। हमें भी कुछ नहीं चाहिए था, अल्योशा, हम भी उसके बिना गुज़ारा कर लेते, पर वह कहता है कि जब वह दूसरों का ख़्याल रखता है तो उसका दिल हल्का हो जाता है, अपने मारे गये परिवार की याद में इतना नहीं तड़पता। तुम उसे देखना—वह बात नहीं है, जो तुम सोच रहे हो।"

"क्या बकवास है यह सब!" पिता बोला। "तुम मुझे बुद्धू मत बनाओ... मुझे तुम्हारे साथ ऊब हो रही है, पर मैं अभी जीना चाहता हूँ।"

"हमारे साथ रहो, अल्योशा..."

"मैं तुम्हारे साथ रहूँगा और तुम अपने सेम्योन-मेम्योन के साथ?"

"नहीं, ऐसा नहीं होगा, अल्योशा। वह अब कभी हमारे यहाँ नहीं आयेगा, मैं उसे कह दूँगी कि वह अब न आये।"

"अच्छा, अब ऐसा नहीं होगा, मतलब पहले हुआ था?.. वाह री, ल्यूबा, सभी औरतें ऐसी हैं?"

"कैसी हैं?" माँ ने पूछा। "क्या मतलब—सभी ऐसी हैं? मैं ऐसी नहीं हूँ... मैं रात-दिन काम करती रही हूँ, हम भाप इंजनों के बायलरों में लगाने की तापसह ईंटें बनाते थे। मेरा मुँह लटक गया है, शक्ल डरावनी हो गयी है, सबके लिये मैं बेगानी हो गयी हूँ, मेरी सूरत देखकर तो भिखारी भी मुझसे भीख नहीं माँगेगा। मैंने भी मुसीबतें झेली हैं, बच्चे घर पर अकेले होते थे। मैं काम से लौटती तो घर पर न भट्ठी तपी होती, न कुछ पका होता, बच्चे उदास अँधेरे में बैठे होते, एकदम थोड़े ही वे सब कुछ करना सीख गये थे, जैसे अब करने लगे हैं, पेत्या भी तो छोटा-सा ही था।... तब सेम्योन येव्सेयेविच हमारे यहाँ आने लगा। आकर बच्चों के साथ बैठा रहता। वह तो

निपट अकेला है। मुझसे उसने पूछा : आपके यहाँ आ जाया करूँ? कुछ गरमाहट पा लिया करूँगा। मैंने कहा : हमारे यहाँ भी ठण्डक है, लकड़ियाँ भी गीली हैं। वह बोला : कोई बात नहीं, मेरी तो आत्मा ठण्ड से जकड़ी हुई है, आपके बच्चों के पास बैठकर मन को थोड़ी गरमाहट मिलेगी। मेरी लिये भट्ठी जलाने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैंने कहा : ठीक है आ जाया करना, बच्चों के लिये साथ हो जायेगा, अकेले बैठे डरा नहीं करेंगे। फिर मैं उसकी आदी हो गयी, जब वह आता था तो हम सबको अच्छा लगता था। मैं उसे देखती और तुम्हें याद करती... तुम्हारे बिना इतना सूना था, दिल इतना उदास रहता था; कोई आ जाये तो उदासी यों नहीं काटती और समय भी जल्दी कटता है। क्या करना है हमें समय का, जब तुम ही साथ नहीं!"

"आगे बोलो, आगे क्या हुआ?" पिता उतावला हो रहा था।

"आगे कुछ नहीं। अब तुम आ गये हो, अल्योशा।"

"ऐसा है तो ठीक है," पिता ने कहा। "सोना चाहिये अब।?"

पर माँ ने अनुरोध किया :

"ठहर जाओ अभी। कुछ बातें कर लें , मैं इतनी खुश हूँ तुम्हारे साथ।"

"बस ही नहीं कर रहे," बिस्तर में लेटा पेत्या सोच रहा था, "ठीक है, सुलह हो गयी, बात खत्म; माँ को सुबह काम पर जाना है, जल्दी उठना है, पर उसे सोने की सुध नहीं, बेवक्त ही खुश हो गयी है, देखो तो रोना बन्द हो गया।"

"इस सेम्योन को क्या तुम से प्यार था?" पिता ने पूछा।

"ठहरो, नास्त्या को रजाई ओढ़ा दूँ, नींद में उतार देती है, फिर ठिठुरती है।"

माँ ने नास्त्या को रजाई ओढ़ायी और फिर पेत्या के बिस्तर के पास आकर खड़ी हुई, यह सुननेके लिये कि वह सो रहा है या नहीं। पेत्या माँ के मन की बात भाँप गया और खर्राटे भरने लगा। फिर माँ चली गयी और पेत्या ने उसकी आवाज़ सुनी :

"शायद करता होगा। वह मुझे निहारता था, मैंने देखा था, पर मुझ में अब रहा क्या है–मेरी सूरत देखने लायक है क्या? वह दुख का मारा था, अल्योशा, ऐसे में दिल में किसी के लिये प्यार होना चाहिये।"

"तुम उसे चूम ही लेती, अगर बात ऐसी ही थी तो," पिता ने सौहार्दमय स्वर में कहा।

"लो कर लो बात! उसी ने मुझे दो बार चूमा था, हालाँकि मैं नहीं चाहती थी।"

"तुम नहीं चाहती थी तो उसने ऐसा क्यों किया?"

"मुझे क्या पता। वह कह रहा था, सुध खो बैठा, अपनी पत्नी की याद आ गयी उसे, और मैं कुछ-कुछ उसके जैसी हूँ।"

"वह भी मुझ जैसा है?"

"नहीं, अल्योशा। तुम जैसा कोई नहीं, तुम तो निराले हो, एक ही।"

"एक ही? एक से ही तो गिनती शुरू होती है : एक, फिर दो।"

"पर उसने मुझे तो बस गाल पर ही चूमा था, होंठों पर नहीं।"

"इससे क्या फ़र्क पड़ता है।"

"पड़ता है... तुम्हें समझ ही क्या है हमारी ज़िन्दगी की।"

"क्या मतलब, क्या समझ है? मैंने इतनी लम्बी लड़ाई लड़ी है, कितनी ही बार मौत की आँखों में आँखें डालकर देखी है।"

"तुम वहाँ लड़ रहे थे, यहाँ मैं तुम्हारे लिये बेहाल हो रही थी, दुख के मारे मेरे हाथ काँपते थे, मगर काम फुर्ती से करना होता था ताकि बच्चे भूखे न तरसें और देश को भी सहारा हो फ़ासिस्ट दुश्मनों से लड़ने में।"

माँ शान्त स्वर में बोल रही थी, बस उसका दिल ही तड़प रहा था, पेत्या को माँ पर दया आ रही थी : वह जानता था कि माँ ने खुद ही जूतों की मरम्मत करनी सीख ली है ताकि मोची को पैसे न देने पड़े और वह पड़ोसियों के बिजली के चूल्हे ठीक करती है, जिसके बदले में वे उसे आलू देते हैं।

"तुम्हारे बिना यह ज़िन्दगी, यह बिरह मुझसे नहीं सही जा रही थी," माँ कह रही थी। "अगर मैं सहती रहती तो मर जाती, मुझे पता है, मैं मर जाती, तब बच्चों का क्या होता?.. मेरे दिल को इस पीड़ा से ज़रा-सी राहत चाहिये थी, अल्योशा, किसी तरह की कोई खुशी, ताकि मुझे थोड़ा सा आराम मिलता। एक आदमी ने मुझसे कहा कि वह मुझसे प्यार करता है और वैसी ही कोमलता दिखाता था, जैसी कभी तुमने दिखायी थी।"

"यह कौन है, वही सेम्योन-मेम्योन?" पिता ने पूछा।

"नहीं, दूसरा। ट्रेड-यूनियन की जिला समिति में इंस्पेक्टर है..."

"मारो गोली इस बात को, क्या काम करता है वहाँ। हुआ क्या, राहत दिलायी उसने तुम्हें?"

पेत्या को इस इंस्पेक्टर के बारे में कुछ नहीं पता था, वह हैरान हुआ कि उसे क्यों नहीं जानता था। "धत् तेरे की, अम्मा हमारी भी तेज़ है," वह बुदबुदाया।

माँ ने पिता को जवाब दिया :

"मैंने उससे कुछ नहीं पाया, कोई खुशी नहीं, बाद में तो मैं और भी ज़्यादा दुखी हुई। मेरे दिल ने उसका सहारा लेना चाहा था, क्योंकि वह डूब रहा था, पर जब वह मेरे क़रीब आ गया, बिल्कुल क़रीब तो मैं उदासीन थी, उस क्षण मैं अपने घर के काम-काज के बारे में सोच रही थी, और मुझे अफ़सोस हुआ कि मैंने उसे क़रीब आने दिया। मैं समझ गयी कि सिर्फ़ तुम्हारे साथ मैं चैन और सुख पा सकती हूँ, कि जब तुम क़रीब होगे तभी मैं आराम पाऊँगी। तुम्हारे बिना मैं कहीं की नहीं, बच्चों के लिये अपने को नहीं बचा सकती।... हमारे साथ रहो, अल्योशा, हम सब सुखी होंगे!"

पेत्या ने पिता को चुपचाप बिस्तर से उठकर पाइप सुलगाते और स्टूल पर बैठते

सुना।

"कितनी बार उससे मिली थीं, जब उसके बिल्कुल क़रीब आयी थीं?" पिता ने पूछा।

"बस एक बार," माँ ने कहा, "फिर कभी कुछ नहीं हुआ।"

"तो मुझसे यह क्यों कहा कि तुम हमारे बच्चों की माँ हो और केवल मेरे साथ औरत थीं, सो भी बहुत पहले..."

"यह सच है, अल्योशा..."

"कैसा सच? उसके साथ भी तो तुम औरत थीं?"

"नहीं, उसके साथ मैं औरत नहीं थी, मैं बनना चाहती थी, पर नहीं बन सकी।... मैं महसूस कर रही थी कि तुम्हारे बिना मैं मरी जा रही हूँ, मुझे किसी का आसरा चाहिये था, मेरे दिल में घुप्प अँधेरा छा गया था, बच्चों के लिये प्यार की लौ भी इस अँधेरे से घिरती जा रही थी, तुम जानते हो, बच्चों के लिये मैं सब कुछ सहने को तैयार हूँ!"

"ठहरो!" पिता बोला। "तुम कह रही हो कि तुम्हारे इस नये सेम्योन-मेम्योन से तुम्हें धोखा हुआ कि तुमने उससे कोई खुशी नहीं पायी, मगर फिर भी मरी तो नहीं, सही-सलामत बची रही हो?"

"हाँ, मैं मरी नहीं," माँ बुदबुदायी, "मैं ज़िन्दा हूँ।"

"मतलब यहाँ भी तुम मुझसे झूठ बोल रही हो। तुम्हारी सच्चाई कहाँ है?"

"मैं नहीं जानती," माँ बुदबुदा रही थी। "मैं जानती ही क्या हूँ—बहुत कम।"

"खैर। मैं बहुत कम जानता हूँ, मैंने इस ज़िन्दगी में तुमसे कहीं अधिक देखा-जाना है," पिता ने कहा। "बदजात हो तुम, और कुछ नहीं।"

माँ चुप थी। पिता के हाँफने की आवाज़ आ रही थी।

"लो, पहुँच गया घर," वह बोला। "लड़ाई नहीं है, पर तुमने मेरे दिल में वार कर दिया... ठीक है, जियो अपने सेम्योन और मेम्योन के साथ। तुमने मेरा मज़ाक उड़ाया है, मेरी जगहँसाई की है, पर मैं भी इंसान हूँ, कोई खिलौना नहीं..."

पिता अँधेरे में ही कपड़े और जूते पहनने लगा। फिर उसने लालटेन जलायी, मेज़ के पास बैठकर कलाई घड़ी में चाबी भरी।

"चार बजे हैं," वह अपने आप से बोला। "अभी अँधेरा है। सच कहते हैं लुगाइयाँ बहुत हैं, एक बीवी नहीं है।"

घर में सन्नाटा छा गया। नास्त्या सपने में एकसार साँस ले रही थी। पेत्या ने तकिये में मुँह छिपा लिया और भूल गया कि उसे खर्राटे भरने चाहिये।

"अल्योशा!" भोले, सहृदय स्वर में माँ ने कहा। "अल्योशा, मुझे माफ़ कर दो!"

पेत्या ने पिता के कराहने की आवाज़ सुनी, फिर काँच टूटने की आवाज़ आयी। परदे की झिरी में से पेत्या ने देखा कि उनके कमरे में रोशनी कम हो गयी। "लालटेन

की चिमनी तोड़ दी," पेत्या समझ गया। "चिमनियाँ कहीं मिल नहीं रही।"

"तुमने अपना हाथ काट लिया," माँ बोली। "खून निकल रहा है, अल्मारी में से तौलिया ले लो।"

"चुप हो जाओ!" पिता चिल्लाया। "मैं तुम्हारी आवाज़ तक नहीं सुन सकता... जगाओ बच्चों को, तुरन्त जगाओ!.. कहा न मैंने, जगाओ! अभी मैं उन्हें बताता हूँ उनकी माँ कैसी है! जान लें वे भी!"

नास्त्या डरकर चीखी और जाग गयी।

"माँ!" उसने आवाज़ दी। "मैं तुम्हारे पास आ जाऊँ?"

नास्त्या का रात को माँ के पास जाना, उसके बगल में लेटकर गरमाना अच्छा लगता था।

पेत्या उठकर बैठ गया और बोला :

"सो क्यों नहीं रहे? क्यों मुझे जगा दिया? अभी दिन चढ़ा नहीं, बाहर अँधेरा है! क्यों शोर मचा रहे हो और रोशनी जला दी?"

"सो, नास्त्या, सो। अभी उठने का वक़्त नहीं हुआ, अभी मैं तेरे पास आती हूँ," माँ ने जवाब दिया। "पेत्या, तुम भी नहीं उठो और बोलो नहीं।"

"तुम लोग क्यों बोल रहे हो? क्या चाहिये पिताजी को?" पेत्या ने कहा।

"तुम्हें इससे क्या—मुझे क्या चाहिये!" पिता ने जवाब दिया। "देखो तो इस हवलदार को!"

"चिमनी क्यों तोड़ दी? माँ को क्यों डरा रहे हो? वैसे ही उसमें जान नहीं है, रूखा आलू खाती है, मक्खन नास्त्या को देती है!"

"तुझे यह पता है तेरी माँ यहाँ क्या करती रही है?" शिकायत करते छोटे बच्चे की तरह पिता चिल्लाया।

"मुझे पता है, मुझे सब कुछ पता है!" पेत्या बोला। "माँ यहाँ तुम्हें याद करके रोती रही है, तुम्हारी राह देखती रही है।

अब तुम आ गये हो तब भी वह रो रही है। तुम्हें कुछ नहीं पता!"

"तू अभी समझता ही क्या है!" बाप को गुस्सा आ गया। "बुड्ढा बाबा कहीं का!"

"मैं सब कुछ समझता हूँ," पेत्या ने अपने बिस्तर से जवाब दिया। "तुम खुद कुछ नहीं समझते हो। अब तो कहीं जीने के दिन आये हैं और तुम यहाँ लड़ रहे हो बेवकूफ़ों की तरह..."

पेत्या चुप हो गया; अपने सिरहाने पर लेटकर वह अचानक निस्स्वर रोने लगा।

"बहुत बड़े बनते हो, घर में सब पर हुक्म चलाते हो," पिता बोला। "खैर, अब तुम्हीं इस घर को सम्भालना..."

आँसू पोंछकर पेत्या ने जवाब दिया :

"वाह, कैसे बाप हो, कैसी बातें कर रहे हो, इतने बड़े हो, लड़ाई में लड़े हो... कल अपंगों की सहकारी दुकान में जाना, वहाँ खरीतोन चचा काउण्टर पर काम करता है, डबलरोटी तोलता है, कभी डण्डी नहीं मारता। वह भी लड़ा था और घर लौट आया है। जाके उससे पूछना, वह सबको बताता है और हँसता है, मैंने खुद सुना था। उसकी बीवी आन्या है, उसने ड्राइवरी सीखी है, दुकानों में डबलरोटी पहुँचाती है, दिल की साफ़ है, रोटी नहीं चुराती। उसकी भी दोस्ती हो गयी थी। उसके दोस्त को भी पदक मिला है, एक बाँह नहीं है उसकी..."

"क्या उल्टी-सीधी हाँक रहा है, सो जा, जल्दी ही उजाला होने लगेगा," माँ ने कहा।

"तुमने भी मुझे सोने नहीं दिया... उजाला अभी जल्दी नहीं होगा। इस लूले की आन्या से दोस्ती हो गयी थी, दोनों खुश थे। खरीतोन लड़ाई में लड़ रहा था। फिर खरीतोन लौट आया और आन्या को कोसने लगा। सारा दिन उसे गालियाँ देता रहता, रात को शराब पीता, आन्या रोती रहती, कुछ खाती-पीती नहीं थी। कोसता रहा, कोसता रहा, फिर थक गया, आन्या को सताना बन्द कर दिया उसने और बोला : अरी बुद्धू, क्या तुझे एक लूला ही मिला, देख मैंने तो तेरे बिना ग्लाशा से भी दोस्ती की, अप्रोस्का से भी और मरूस्या से भी, तेरे नाम की आन्या भी मिली और ऊपर से जर्मन मग्दालीना भी। खुद हँसता जाता था। आन्या भी हँसती जाती थी, बाद में वह खुद सबसे कहने लगी—मेरा खरीतोन अच्छा है, उससे अच्छा कोई नहीं है, वह फासिस्टों को मारता रहा है और औरतें उस पर मरती थीं। खरीतोन चचा दुकान में हमें सब बताता है। अब वे अच्छी तरह जी रहे हैं, चैन से। खरीतोन चचा फिर हँसता है, कहता है : चकमा दे दिया मैंने अपनी आन्या को, किसी से मेरी दोस्ती नहीं थी, वो भी तो मैंने आन्या को जान-बूझकर डराया है। सो जाओ, बापू, बत्ती बुझा दो, क्या लालटेन चिमनी के बिना धुआँ छोड़ रही है..."

इवानोव मुँह बाये अपने पेत्या की बातें सुन रहा था। "हरामी कहीं का!" पिता पुत्र के बारे में सोच रहा था। "मुझे तो लगा, अभी मेरी माशा की बात भी बताने लगेगा।"

पेत्या निढाल हो गया और खर्राटे भरने लगा। इस बार वह सचमुच सो गया।

वह जब जागा तो दिन पूरा चढ़ चुका था। वह डर गया कि बहुत देर तक सोता रहा और सुबह से घर का कोई काम नहीं किया।

घर पर अकेली नास्त्या ही थी। वह फ़र्श पर बैठी तस्वीरोंवाली क़िताब के पन्ने पलट रही थी जो बहुत पहले माँ ने उसके लिये खरीदी थी। वह रोज़ाना इस क़िताब को देखा करती थी, क्योंकि दूसरी कोई क़िताब उसके पास नहीं थी। तस्वीरें देखते हुए वह अक्षरों पर उँगली चलाती थी जैसे कि पढ़ रही हो।

"क्या सुबह-सुबह क़िताब गन्दी कर रही है? रख दे वापस!" पेत्या ने बहन से

कहा। "माँ कहाँ है, काम पर गयी है?"

"काम पर," नास्त्या ने धीरे से कहा और क़िताब बन्द कर दी।

"पिता जी कहाँ हैं?" पेत्या ने घर में नज़र दौड़ायी। "अपना झोला ले गये?"

"अपना झोला ले गये," नास्त्या ने कहा।

"तुझसे क्या कहा?"

"कुछ नहीं कहा, बस मुझे प्यारी की—मुँह पर और आँखों पर।"

"अच्छा," पेत्या बोला और सोचने लगा। "उठ फ़र्श से," उसने बहन से कहा, "चल, तेरा मुँह-हाथ धो दूँ और कपड़े पहना दूँ तुझे, अभी हम बाहर चलेंगे।"

उस वक़्त उनका बाप स्टेशन पर बैठा हुआ था। उसने दो सौ ग्राम वोद्का पी ली थी और सफ़र के लिये मिला कूपन देकर कैण्टीन में सुबह-सुबह खाना भी खा लिया था। रात को ही उसने पक्का फैसला कर लिया था कि उस शहर को चला जायेगा, जहाँ वह माशा को छोड़ आया था, वहाँ उससे मिलेगा और शायद फिर कभी भी जुदा न होगा। इवानोव को उम्मीद थी कि उसे फिर से देखकर माशा को थोड़ी-सी तो खुशी होगी ही, उसके लिये बस इतना ही काफ़ी होगा; मतलब उसका भी कोई क़रीबी इंसान है, सो भी सुन्दर, हँसमुख और नेकदिल। आगे जो होगा देखा जायेगा।

जल्दी ही उस दिशा को जानेवाली गाड़ी आ गयी, जिधर से अभी कल ही इवानोव आया था। अपना झोला उठाकर वह गाड़ी में बैठने चल दिया।

डिब्बे में सवार होकर वह अन्दर नहीं गया, दरवाज़े के पास ही खड़ा रहा, ताकि जब गाड़ी चले तो आखिरी बार इस छोटे से शहर को देख सके, जहाँ वह लड़ाई से पहले रहता था, जहाँ उसके बच्चे पैदा हुए थे।...

गाड़ी रवाना हुई और धीरे-धीरे स्टेशन के सिग्नल पार करते हुए पतझड़ के सूने खेतों-मैदानों की ओर चल दी। इवानोव दरवाज़े का हैण्डल पकड़े खड़ा था और सामने से गुजरते-मकानों-इमारतों को, दमकल की मीनार को देख रहा था—यह कभी उसका अपना शहर था।... शायद वह ल्यूबा को माफ़ कर सकता था, पर इससे क्या होता? उसके दिल में ल्यूबा के लिये कोई कोमल भाव नहीं रहा था, वह ऐसे इंसान को माफ़ नहीं कर सकता, जो सिर्फ़ इसलिये दूसरे से चूमा-चाटी करता, दूसरे के साथ रहता रहा था ताकि लड़ाई के लम्बे बरसों में अकेलापन काटने को न दौड़े, पति का बिछोह न सताये।

इवानोव डिब्बे के अन्दर जाकर लेट जाना चाहता था। वह अपने घर को, जहाँ उसके बच्चे रह गये थे, आख़िरी बार नहीं देखना चाहता था; बेकार में अपना मन खराब करने में क्या रखा है। उसने सिर बाहर निकालकर आगे नज़र डाली—यह देखने के लिये कि वह क्रासिंग कितनी दूर है, जिसके पास उसका घर है, और तभी वह उसे दिख गया। गाँव से शहर को आती कच्ची सड़क यहाँ रेल लाइन को पार करती थी। आम तौर पर व सूनी ही रहती थी। आज भी ऐसा ही था, बस शहर की

ओर से, काफ़ी दूर दो बच्चे दौड़े आ रहे थे; एक बड़ा था और दूसरा छोटा, बड़ा छोटे का हाथ पकड़कर उसे जल्दी-जल्दी अपने पीछे खींच रहा था। छोटा बहुत चाहते हुए भी, पूरे जतने से अपने छोटे-छोटे पाँव चलाते हुए भी उसका साथ नहीं दे पा रहा था, तब बड़ा उसे अपने पीछे घसीटने लगता। शहर के आखिरी मकान के पास पहुँचकर उन्होंने स्टेशन की ओर नज़र डाली, शायद यह तय करने के लिये कि उधर जायें या नहीं। फिर उन्होंने क्रासिंग से गुजर रही गाड़ी की ओर नज़र डाली और सड़क पर सीधे उसकी ओर दौड़ चले, मानो अचानक उन्होंने गाड़ी पकड़ने की ठान ली।

थोड़ी दूर भागकर दोनों एक साथ गिर पड़े, उठे और फिर से दौड़ने लगे। बड़े ने खाली हाथ उठाया, अपना मुँह इवानोव की ओर मोड़ा और अपनी ओर हाथ हिलाने लगा, मानो किसी को बुला रहा हो कि वह उसके पास लौट आये। तभी दोनों फिर से गिर पड़े। इवानोव ने देखा कि बड़े बच्चे के एक पाँव में गरम जूता था और एक में रबड़ का—इसीलिये वह बार-बार गिर रहा था।

इवानोव ने आँखें मूँद लीं, वह गिर पड़े और निश्क्त बच्चों को देखना और उनका दर्द महसूस नहीं करना नहीं चाहता था, पर उसने अनुभव किया कि उसकी छाती में जैसे आग दहक उठी है, मानो उसमें बन्द हृदय सारी उम्र छटपटाता रहा है और अब वह उन्मुक्त हो गया है। इवानोव वह सब, जो वह पहले जानता था, अब अधिक सही और सच्चे रूप में जान गया। पहले वह दूसरे के जीवन को अपने अहंकार और स्वार्थ के पर्दे क पीछे से देखता था, पर अब सहसा उसके उन्मुक्त हृदय ने इस जीवन का सीधा स्पर्श पाया था।

डिब्बे से सिर बाहर निकालकर उसने एक बार गाड़ी के पीछे दूर छूटे बच्चों की ओर देखा। अब वह जानता था कि ये उसके बच्चे थे—पेत्या और नास्त्या। उन्होंने उसे देखा होगा, जब उसका डिब्बा क्रासिंग से गुजर रहा था, और पेत्या उसे माँ के पास घर चलने को बुला रहा था, मगर वह उनकी ओर ध्यान से नहीं देख रहा था, कुछ दूसरी ही बात सोच रहा था, सो अपने बच्चों को नहीं पहचान पाया।

अब पेत्या और नास्त्या गाड़ी के बहुत पीछे पटरी के बगल में पगडण्डी पर दौड़ रहे थे। पेत्या ने पहले की ही भाँति नन्ही नास्त्या का हाथ पकड़ रखा था और जब वह पाँव नहीं चला पाती थी तो उसे घसीटता था।

इवानोव ने अपना झोला ज़मीन पर फेंक दिया, डिब्बे की निचली सीढ़ी पर उतरा और उस रेतीली पगडण्डी पर कूद गया, जिस पर उसके पीछे उसके बच्चे दौड़े आ रहे थे।

अनजान फूल

एक नन्हा फूल इस दुनिया में रहता था। कोई नहीं जानता था कि वह भी धरती पर है। वह बंजर पर अकेला ही उगा हुआ था। गायें और बकरियाँ इस बंजर पर चरने नहीं आतीं थीं और बच्चे कभी वहाँ खेलने नहीं आते थे। इस बंजर पर घास नहीं उगती थी, यहाँ पुराने पत्थर ही बिखरे हुए थे और उनके बीच थी सूखी, निष्प्राण चिकनी मिट्टी। इस बंजर पर बस हवा ही घूमा करती थी। हवा अपने साथ बीज लाती थी और उन्हें चारों ओर बोती जाती थी—काली, नम मिट्टी में भी और बूचे, पथरीले बंजर पर भी। काली, उर्वरा मिट्टी में बीजों से फूल-पौधे उगते थे, पत्थर और चिकनी मिट्टी में बीज मर जाते थे।

एक बार हवा में से एक बीज पत्थर और चिकनी मिट्टी के बीच छोटी सी गढ़ही में आ गिरा। बड़ी देर तक वह दुखियारा वहाँ बेजान पड़ा रहा, ओस पी-पीकर आखिर जी उठा : अंकुर फूटा, जड़ के महीन रोयें निकले, पत्थर और चिकनी मिट्टी से चिपक गये और पौधा बढ़ने लगा।

इस तरह इस संसार में उस नन्हे फूल का जीवन आरम्भ हुआ। पत्थर और चिकनी मिट्टी से वह कोई आहार नहीं पा सकता था। आकाश से गिरने वाली वर्षा की बूँदें ज़मीन की सतह पर ही बह जाती थीं, उसकी जड़ तक नहीं पहुँचती थी, लेकिन पौधा फिर भी जीता जा रहा था और धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। वह हवा के सामने अपनी पत्तियाँ फैलाता और हवा पौधे के पास पहुँचकर शान्त हो जाती; हवा अपने साथ श्यामली धरती के जो कण लाती वे बंजर पर गिर जाते; और उन कणों में फूल के लिये आहार होता, मगर वे कण सूखे होते। उन्हें भिगोने के लिये पौधा सारी रात ओस के इन्तज़ार मे पत्तियाँ फैलाये खड़ा रहता और ओस की एक-एक बूँद पत्तियों पर जमा करता रहता। जब पत्तियाँ ओस से भारी हो जातीं तो वह उन्हें झुका देता, ओस नीचे लुढ़क जाती और श्यामल कणों को भिगोती, चिकनी मिट्टी को काटती।

दिन में पौधा हवा के इन्तज़ार में पहरा देता रहता और ओस के इन्तज़ार में। उसने बड़ी-बड़ी पत्तियाँ उगा ली थीं ताकि वे हवा को रोक सकें और ओस जमा कर सकें। बहुत मुश्किल था यह पौधे के लिये—केवल हवा से गिरनेवाले मिट्टी के कणों से आहार पाना और उनके लिये भी ओस जमा करना। परन्तु वह जीना चाहता था और भूख एवं थकावट की अपनी पीड़ा को धैर्य से सहता था। चौबीस घण्टे में केवल एक बार पौधा खुश होता था—जब सूरज की पहली किरणें उसकी क्लान्त पत्तियों

का स्पर्श करती थी।

यदि हवा बहुत देर तक बंजर पर नहीं आती थी तो नन्हे पौधे को बहुत कष्ट होता था, उसके लिये जीना और बढ़ना मुश्किल हो जाता था।

परन्तु पौधा उदास होकर नहीं जीना चाहता था, इसलिये जब वह बहुत ही दुखी होता तो ऊँघने लगता। वह हर हालत में बड़ा होने की कोशिश करता था, भले ही उसकी जड़ों को बूचे पत्थर और सूखी चिकनी मिट्टी को चचोड़ना पड़ता। ऐसे समय में उसकी पत्तियाँ पूरी शक्ति पाकर हरी नहीं हो सकती थीं : उनका एक शिरा नीली होती थी, दूसरी लाल, तीसरा आसमानी या सुनहरे रंग की। ऐसा इसलिये होता था कि पौधे को आहार पूरा नहीं मिलता था और उसका कष्ट पत्तियों में अलग-अलग रंगों से अंकित हो जाता था। परन्तु पौधा स्वयं यह नहीं जानता था : वह तो अन्धा था, अपने आप को नहीं देख सकता था कि वह कैसा है।

गर्मियों में पौधे के शिखर पर फूल खिल आया। अभी तक तो वह मामूली घास-पात जैसा ही था, पर अब फूल का पौधा बन गया था। फूल की पंखुड़ियाँ सादे, उजले रंग की थीं, सुस्पष्ट और प्रखर रंग की, जैसा तारे का होता है। और तारे की ही भाँति उसमें सजीव प्रकाश टिमटिमाता था और अँधेरी रात में भी वह नज़र आता था। जब बंजर पर हवा आती थी तो वह सदा फूल को छूती थी और उसकी सुगन्ध अपने साथ ले जाती थी।

एक बार सुबह-सुबह दाशा नाम की लड़की उस बंजर के पास से गुजर रही थी। वह अपनी सहेलियों के साथ पायोनियर कैम्प में रह रही थी, आज सुबह उठने पर उसे माँ की बहुत याद आने लगी थी। उसने माँ को चिट्ठी लिखी थी और उसे डालने स्टेशन पर जा रही थी ताकि वह जल्दी से माँ को मिल जाये। रास्ते में दाशा की चिट्ठी का लिफाफा चूम रही थी, उससे कह रही थी कि वह कितना सौभाग्यशाली है—दाशा से पहले माँ से मिलेगा।

बंजर के सिरे पर दाशा को सुगन्ध आयी। उसने इधर-उधर नज़र दौड़ायी। आस-पास कोई फूल नहीं था। पगडण्डी पर केवल छोटी-छोटी घास उग रही थी और बंजर तो बिल्कुल बूचा-नंगा था। मगर हवा बंजर से आ रही थी और वहाँ से हल्की सुगन्ध ला रही थी, जो किसी नन्ही अनजान जान की पुकार जैसी लगती थी। दाशा को एक कहानी याद आ गयी, जो माँ ने बहुत पहले सुनायी थी : एक फूल अपनी माँ के बिना बहुत उदास रहता था, पर वह रो नहीं सकता था, अपनी सारी उदासी वह सुगन्ध में ही बहा देता था।

"शायद यह फूल भी मेरी तरह अपनी माँ के बिना उदास हो रहा है," दाशा ने सोचा।

वह बंजर पर गयी और वहाँ पत्थर के पास उसने वह नन्हा फूल देखा। दाशा ने ऐसा फूल पहले कभी नहीं देखा था—न खेत-मैदान में, न जंगल में, न क़िताब की

तस्वीरों में, न वनस्पति उद्यान में—कहीं भी नहीं। फूल के पास ज़मीन पर बैठकर उसने फूल से पूछा :

"तू ऐसा क्यों है?"

"पता नहीं," फूल ने जवाब दिया।

"तू दूसरे फूलों से बिल्कुल अलग क्यों है।?"

फूल इस सवाल का जवाब नहीं जानता था। लेकिन वह पहली बार इतनी पास से आदमी की आवाज़ सुन रहा था, पहली बार कोई उसे देख रहा था, सो वह चुप रहकर दाशा को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता था।

"इसलिये कि मेरा जीवन कितना कठोर है," फूल ने जवाब दिया।

"तेरा नाम क्या है?" दाशा ने पूछा।

"मुझे कभी किसी ने नाम लेकर नहीं पुकारा," नन्हे फूल ने कहा, "मैं यहाँ अकेला रहता हूँ।"

दाशा ने बंजर पर नज़र घुमायी।

"यहाँ तो बस पत्थर और चिकनी मिट्टी ही है," दाशा बोली। "कैसे तू अकेला जी रहा है, कैसे तू, नन्ही जान, चिकनी मिट्टी में से उग आया और मरा नहीं?"

"पता नहीं," फूल ने जवाब दिया।

दाशा ने उस पर झुककर उसे चूमा।

अगले दिन सारे बच्चे नन्हे फूल से मिलने आये। दाशा उन्हें लायी थी, पर बंजर तक पहुँचने से पहले ही उसने सबसे साँस खींचने को कहा और बोली :

"देखा, कैसी सुगन्ध आ रही है! यह उसकी साँस है।"

बच्चे बहुत देर तक नन्हे फूल के गिर्द खड़े रहे, बाँके वीर की तरह उसे निहारते रहे। फिर उन्होंने सारे बंजर का चक्कर लगाया, अपने कदमों से उसे नापा और हिसाब लगाया कि इस बेजान चिकनी मिट्टी में जान डालने के लिये कितने ठेले गोबर और राख के लाने होंगे।

वे चाहते थे कि बंजर की धरती उर्वरा बन जाये। तब यह अनजान नन्हा फूल भी आराम पायेगा, उसके बीजों से उसकी अनुपम सन्तान जन्म लेगी और मरेगी नहीं—सबसे अच्छे, सजीव प्रकाश से चमकते फूल उगेंगे, जो और कहीं नहीं है।

चार दिन तो बच्चे बंजर पर खाद डालने का काम करते रहे। उसके बाद वे दूसरे खेत देखने, वनों में घूमने गये, इस बंजर पर फिर नहीं आये। बस दाशा ही एक बार नन्हे फूल से विदा लेने आयी। गर्मिया खत्म हो रही थीं, बच्चों को पायोनियर कैम्प से घर लौटना था, और वे चले गये।

अगली गर्मियों में दाशा फिर उसी पायोनियर कैम्प में आराम करने आयी। सारे लम्बे जाड़े में वह अज्ञात नाम के उस नन्हे फूल को याद करती रही थी। वह फौरन ही बंजर पर उससे मिलने गयी।

दाशा ने देखा कि बंजर तो बिल्कुल बदल ही गया है। वहाँ घास-पात और फूल-उग रहे थे, उनके ऊपर चिड़ियाँ और तितलियाँ उड़ रही थीं। फूलों से सुगन्ध रही थी, वैसी ही जैसी उस नन्हे परिश्रमी फूल की थी।

लेकिन पत्थर और चिकनी मिट्टी के बीच उगा पिछले साल का पौधा वहाँ था। वह पिछले पतझड़ में मर गया होगा। नये फूल-पौधे भी अच्छे थे, मगर पहले फूल जितने नहीं। दाशा उदास हो गयी कि वह पहलेवाला फूल नहीं हैं वापस चल दी। और फिर अचानक ठिठक गयी। एक दूसरे से सटे दो पत्थरों बीच नया फूल उग आया था–हूबहू उस पुराने फूल जैसा ही, बस उससे थोड़ा-सा ज़्यादा अच्छा, उससे भी ज़्यादा सुन्दर। यह फूल पत्थरों के बीच से उग रहा था; वह अपने पिता की ही भाँति सजीव और धैर्यवान था, और पिता से भी अधिक शक्तिशाली, क्योंकि वह पत्थर में जी रहा था।

दाशा को लगा कि फूल उसकी ओर हाथ बढ़ा रहा है, अपनी सुगन्ध निशब्द स्वर में उसे पुकार रहा है।

उल्याना

एक बार इस संसार में एक अनुपम बच्ची हुई थी। अब सब लोग उसे भूल गये हैं यह भी भूल गये हैं कि उसका नाम क्या था। किसी को उसकी याद नहीं है–न उसका नाम, न उसकी शक्ल। मेरी नानी ही उसे नहीं भूली थीं, उसी ने मुझे बताया वह बच्ची कैसी थी।

नानी ने बताया कि बच्ची का नाम उल्याना था। जो कोई भी नन्ही उल्याना को देखता था, अपने दिल में ईमान की कसक महसूस करता था, क्योंकि उल्याना का चेहरा कोमल और स्वभाव दयालु था, पर उसे देखनेवाल हर कोई ईमानदार और दयालू नहीं था।

उसकी आँखें बड़ी और निर्मल थीं, और हर कोई देखता था कि उनकी गहराई में, इस गहराई के तले पर वह है, जो संसार में सबसे प्रमुख है, सबसे प्रिय है, और हर कोई उल्याना की आँखों में झाँकना चाहता था और उनमें अपने लिए जो सबसे महत्वपूर्ण और सुखद है वह देखना चाहता था।... परन्तु उल्याना पलकें झपकाती थी, इसलिए कोई भी ठीक से वह नहीं देख पाता था, जो उसकी निर्मल आँखों की गहराई में था। जब लोग फिर उसकी आँखों में झाँकते थे और कुछ लोग वहाँ जो देखते थे उसे समझने लगते थे तो उल्याना फिर से पलकें झपकाती थी, सो पूरी तरह यह पता नहीं चल पाता थी कि उसकी आँखों की गहराई में क्या नज़र आता है।

पर एक आदमी था, जो उल्याना की निर्मल आँखों की पूरी गहराई में झाँक सका था और यह देख सका था कि वहाँ क्या है। इस आदमी का नाम देम्यान था। उसका काम यह था कि जब फ़सल अच्छी होती तो वह किसानों से सस्ते में अनाज खरीद लेता और अकाल के बरसों मे उसे महँगा बेचता, इस तरह वह खूब खाता-पीता और अमीर बना हुआ था। देम्यान ने उल्याना की आँखों की अतल गहराई में अपने आप को देखा, और वहाँ वह वैसा नहीं था जैसा दूसरों को लगता था, बल्कि जैसा वास्तव में थाः लोभी जबड़े और दारुण दृष्टि; देम्यान के दिल में जो कुछ छिपा था वह उसके चेहरे पर साफ़ लिखा हुआ था। अपना असली रूप देखते ही देम्यान घर-बार छोड़कर चला गया और बहुत दिनों तक किसी को उसकी कोई खबर नहीं मिली। लोग उसे भूलने ही लगे।

उल्याना की आँखों में सदा केवल सच्चाई प्रतिबिम्बित होती थी यदि किसी क्रूर व्यक्ति का चेहरा सुन्दर होता और पहनावा महँगा तो उल्याना की आँखों में वह कुरूप

होता और उसका शरीर आभूषणों से लदा नहीं, घावों से भरा होता।

स्वयं उल्याना को यह नहीं पता था कि उसकी आँखों में सच्चाई प्रतिबिम्बित होती है। वह अभी छोटी और नासमझ थी। दूसरे लोग उसकी आँखों में अपने को पूरी तरह देख नहीं पाते थे, पर हर कोई उसे विमुग्ध होकर देखता था और सोचता था कि संसार में ऐसी बच्ची है तो जीना अच्छा है।

उल्याना अपनी सगी माँ और सगे पिता को नहीं जानती थी। वह गर्मियों में सड़क के किनारे चीड़ तले बने कुएँ के पास पड़ी मिली थी। वह तब कुछेक हफ्ते की थी; वह शाल में लिपटी ज़मीन पर लेटी हुई थी और चुपचाप अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से आकाश को एकटक देख रही थी। उसकी आँखों का रंग बदल रहा था: कभी वे हल्की सुरमई होतीं, कभी नीली और कभी स्याह काली।

भले लोग उसे अपने घर ले गये, एक निःसन्तान किसान दम्पति ने उसे गोद ले लिया और उसका नाम उल्याना रखा। अपन सारा बचपन उल्याना ने उसे गोद में लेनेवाले माता-पिता के घर में गुजारा।

जब वह सोती थी तो उसकी आँखें अधखुली रहती थी और वह मानो उनसे देखती रहती थी। सुबह जब आँगन में उजाला होने लगता तो उल्याना की अधखुली आँखों में वह सब कुछ प्रतिबिम्बित होता था, जो घर की खिड़की से बाहर नज़र आता था। वह खिड़की के पास ही सोती थी और उसका चेहरा प्रभात के प्रकाश से आलोकित होता था। खिड़की के पास उगते बेद की टहनियाँ, बाल रवि किरणों में निखरे बादल और उड़ते पंछी—यह सब एक बार बाहर होता था और दूसरी बार उल्याना की आँखों में चमकता नज़र आता था और उल्याना की आँखों में बादल, पंछी और बेद की पत्तियाँ—ये सब उन्हें लोग जैसा देखते थे उससे कहीं अधिक स्पष्ट और उल्लासमय होते थे।

माता-पिता नन्हीं उल्याना से इतना प्यार करते थे कि सोते-सोते भी वे उसके लिए बेचैन हो उठते, जाग जाते और उठकर उल्याना के पास चले आते। झुटपुटे में बड़ी देर तक इस परायी बच्ची को देखते रहते, जो उन्हें सगों से भी अधिक प्यारी हो गयी थी। उन्हें लगता था कि उसकी अधमुँदी आँखों से नूर झरता है, और ऐसे क्षणों में उनके ग़रीब घर में रौनक आ जाती थी, जैसी उनकी जवानी में उत्सव के दिन होती थी।

"ज़्यादा दिन जियेगी नहीं," माँ हौले से कहती।

"चुप रहो, क्यों अशुभ बोल मुँह से निकालती हो," पिता कहता। "क्यों उसे कुछ होगा, इतनी छोटी उम्र में?"

"ऐसे लोग ज़्यादा दिन नहीं जीते," माँ फिर से कहती। "इसकी आँखें नींद में बन्द नहीं होती।" उनके गाँव में यह माना जाता था कि जिन बच्चों की आँखें नींद में पूरी बन्द नहीं होती, वे जल्दी मर जाते हैं।

कितनी ही बार माँ ने अपने हाथ से उल्यान की पलकें मूँदनी चाही थी, लेकिन

पिता बच्ची को हाथ नहीं लगाने देता था ताकि वह डर न जाये। दिन में जब उल्याना घर के कोने में चिथड़ों से खेलती य मिट्टी की रकाबी में से पानी लोहे के मग से उंडेलती होती, तब भी पिता बेटी को न छूने का ही यत्न करता था मानो डरता हो कि उसकी नन्ही देह को कुछ हो जायेगा।

उल्याना के सिर पर सुनहरे बाल घुँघराली लटों में उग रहे थे, लगता था जैसे हवा उनमें घुसी हो और वहीं रह गयी हो। उल्याना जागती होती या सोती—सदा ही उसके चेहरे पर चिन्ता का और एकटक कहीं दूर देखने का भाव होता। माता-पिता को लगता कि उल्याना उनसे कुछ पूछना चाहती है, कि उसे कुछ सता रहा है, लेकिन पूछ नहीं सकती क्योंकि उसे बोलना नहीं आता।

पिता ने गाँव के कम्पाउण्डर-डाक्टर को बुलाया, वह सोच रहा था, शायद उल्याना को कोई दर्द हो और डाक्टर उसकी मदद कर पाये। डाक्टर ने उल्याना को देखकर कहा कि बड़ी होने पर सब ठीक हो जायेगा।

"सबको इतनी प्यारी क्यों लगती है यह?" पिता ने डाक्टर से पूछा। "बेहतर होता इतनी अच्छी न होती!"

"यह प्रकृति का खेल है," डाक्टर ने उत्तर दिया।

माता-पिता को यह बात बुरी लगी।

"कैसा खेल!" उन्होंने कहा। "इंसान है वह, कोई खिलौना नहीं।"

दूसरे लोग पहले की ही भाँति उल्याना की आँखों में झाँकने की कोशिश करते ताकि वहाँ देख सकें कि वे वास्तव में कैसे हैं। हो सकता है किसी ने अपना सच्चा रूप भी देख लिया हो, लेकिन किसी ने बताया नहीं, बस यही कहा कि वह देख नहीं पाया क्योंकि उल्याना ने पलकें झपका दीं।

सब लोग जानते थे कि उल्याना की आँखें अपना रंग बदलती हैं। यदि वह कुछ अच्छा देखती—आकाश, तितली, गाय, फूल या राह चलते गरीब बूढ़े बाबा को तो उसकी आँखों में पारदर्शी चमक होती, पर जब वह किसी ऐसी चीज़ की ओर देखती, जिसमें बुराई छिपी होती तो उकी आँखों में अँधेरा छा जाता, वे अपारदर्शी हो जातीं। बस, उल्याना की आँखों के बीचोंबीच, उनकी पूरी गहराई में सदा एक जैसा उज्ज्वल प्रकाश रहता और उसमें उस व्यक्ति या वस्तु का सच्चा रूप प्रतिबिम्बित होता, जिसकी ओर वह देख रही होती—वह नहीं जो सबको बाहर से दिखता है, बल्कि जो अन्दर छिपा और अदृश्य होता है।

जब उल्याना दो साल की हुई तो वह बोलने लगी और उसकी बोली एकदम स्पष्ट थी, मगर वह कम ही बोलती थी, शब्द भी थोड़े ही जानती थी।... वह खेत में और गाँव में वही कुछ देखती थी जो सबको दिखता और समझ में आता है। लेकिन उल्याना जो कुछ देखती थी उस पर सदा चकित होती थी और कभी-कभी तो जिस चीज़ को देख रही होती उसकी ओर इशारा करते हुए डर के मारे चीखती और रोती थी।

"क्या हुआ, बिटिया, क्या बात है?" पिता उससे पूछता और उसे गोद में उठा लेता। उसकी समझ में न आता कि बच्ची इतनी परेशान क्यों हो रही है। "क्यों ऐसे मुझे देख रही है? वह देख, वहाँ गायें घर को जा रही हैं, यहाँ मैं तेरे साथ खड़ा हूँ।"

उल्याना डरते हुए पिता की ओर देखती, मानो वह कोई बेगाना हो और उसने उसे पहले कभी न देखा हो। भयभीत वह गोद से उतर जाती और पिता से दूर भाग जाती। ठीक इसी तरह वह माँ से डरती और उससे छिपती थी।

उल्याना केवल अँधेरे में शान्त रहती थी, जहाँ उसकी आँखों को कुछ नहीं दिखता था।

सुबह जागते ही उल्याना घर से भाग जाना चाहती। वह अँधेरी कोठरी में चली जाती या मैदान में, जहाँ खड्ड में रेतीली गुफा थी, और वहाँ झुटपुटे में तब तक बैठी रहती जब तक कि माता-पिता उसे न ढूँढ़ लेते। जब माँ या पिता उसे गोद में उठाते, छाती से लगाते और उसकी आँखें चूमते तो उल्याना डर के मारे रोती और ऐसे थरथर काँपती जैसे कि उसे माँ-बाप नहीं दुलार रहे, बल्कि भेड़ियों ने पकड़ लिया है।

यदि उल्याना उड़ती तितली को देखती तो वह चीखती हुई उससे दूर भाग जाती और बड़ी देर तक उसके भयभीत हृदय में धुकधुकी होती रहती। सबसे ज़्यादा तो उल्याना एक बुढ़िया से डरती थी। वह मेरी नानी थी। नानी इतनी बूढ़ी थी कि गाँव की बुढ़िया भी उसे नानी कहती थी। नानी बहुत कम ही उस घर में जाती थी, जहाँ उल्याना रहती थी, जाती भी तो हमेशा बच्ची के लिए मैदे की मीठी रोटी या मिश्री का डला या दस्ताने ले जाती, जो उसने पूरे चालीस दिन लगाकर बुने होते, या फिर कोई और चीज़, जो उल्याना के काम आ सकती। नानी कहती थी कि वह तो मर गयी होती, उसके दिन तो आ चुके हैं, पर अब नहीं मर सकतीः उल्याना को याद करते ही उसके कमज़ोर दिल में फिर से जान आ जाती है और वह जवान दिल के तरह धड़कने लगता है : उल्याना के लिए स्नेह से, उस पर दया और हर्ष भाव से वह जी उठता है।

मगर उल्याना नानी को देखते ही रोने लगती थी; अपनी चिन्तित आँखों से वह एकटक नानी को देखती जाती और डर से थरथर काँपती।

"इसे सच्चाई नहीं दीखती," नानी कहती। "यह भले को बुरा और बुरे को भला देखती है।"

"पर इसकी आँखों में सारी सच्चाई क्यों नज़र आती है?" पिता पूछता।

"यही तो बात है!" नानी कहती। "इसमें तो सारी सच्चाई चमकती है, पर खुद यह संसार को नहीं समझती, इसे सब कुछ उलटा नज़र आता है। इसकी ज़िन्दगी तो अन्धों से भी बदतर है। इससे अच्छा तो यह अन्धी ही होती।"

"शायद, नानी माँ ठीक ही कहती है," तब पिता ने सोचा था। "उल्याना को बुरा अच्छा दीखता है और भला बुरा।"

उल्याना को फूल अच्छे नहीं लगते थे, वह कभी उन्हें नहीं छूती थी। ज़मीन से कूड़ा-करकट उठाकर झोली में भर लेती थी और अँधेरी जगह पर चली जाती थी। वहाँ अकेली बैठी आँखें मूँदकर कूड़े-करकट से खेलती थी। गाँव के बच्चों में कोई उसका हमजोली नहीं था, उन्हें देखते ही घर भाग जाती।

"मुझे डर लगता है," उल्याना चिल्लाती। "वे डरावने हैं।" तब माँ उल्याना का सिर अपनी छाती से लगाती, मानो बच्ची को अपने दिल में छिपाकर शान्त करना चाहती हो।

गाँव के बच्चे बमिजाज नहीं, नेकदिल थे। उनके चेहरों पर निश्छलता थी। वे उल्याना को चाहते थे और उसे देखकर मुस्कराते थे।

माँ की समझ में नहीं आता था कि उल्याना को किस बात का डर लगता है और उस बेचारी की सुन्दर, अनुपम आँखें संसार में क्या डरावना देखती हैं।

"डरो मत, बिटिया," माँ कहती, "डर काहे का, मैं जो तेरे साथ हूँ।"

उल्याना माँ को देखकर फिर से चिल्लाती :

"मुझे डर लगता है!"

"किससे डर लगता है : यह तो मैं हूँ!"

"तुमसे डर लगता है : तुम डरावनी हो!" उल्याना कहती और आँखें मूँद लेती ताकि माँ को न देखे।

कोई नहीं जानता था कि उल्याना क्या देखती है, खुद वह डर के मारे कुछ कह नहीं पाती थी।

गाँव में एक और बच्ची भी थी। वह चार साल की थी और उसका नाम ग्रूशा था। केवल इस बच्ची के साथ ही उल्याना हिल-मिल गयी। ग्रूशा का चेहरा लंबूतरा था और स्वभाव से वह बिगड़ैल थी। वह अपने माँ-बाप तक से प्यार नहीं करती थी, उनसे कहा करती थी कि बस थोड़ी और बड़ी हो ले फिर बहुत दूर चली जायेगी, जहाँ सब कुछ बहुत अच्छा है, यहाँ तो सब कुछ गन्दा है।

उल्याना ग्रूशा के चेहरे पर उँगलियाँ फेरती और उससे कहती कि वह सुन्दर है। उल्याना की आँखें ग्रूशा के चिड़चिड़े, मनहूस चेहरे को मुग्ध होकर देखती थीं, मानो उल्याना अपने सामने उसे चाहनेवाली और सुन्दर चेहरेवाली सेहली को देख रही हो। ग्रूशा ने एक बार अनजाने में उल्याना की आँखों में झाँक लिया और वहाँ अपने आप को देख लिया, अपनी सच्ची सूरत देख ली। डर के मारे वह चीख उठी और घर भाग गयी। तब से ग्रूशा दिल की नेक हो गयी। अब वह माँ-बाप पर कुढ़ती नहीं थी कि उनके घर में सब कुछ बुरा है। जब वह गुस्सा करना चाहती तो उसे उल्याना की आँखों में देखी अपनी डरावनी सूरत याद हो आती और वह शान्त, विनम्र हो जाती।

उल्याना को फूल और लोगों के भोले चेहरे देखकर भले ही कष्ट होता था, पर

सभी छोटे बच्चों की भाँति वह भी रोटी खाती और दूध पीती थी, और इस तरह बढ़ रही थी। जीवन तेजी से चलता जाता है, जल्दी ही उल्याना पहले पाँच और फिर सात साल की हो गयी।

उन्हीं दिनों वही देम्यान गाँव में लौट आया जो बहुत पहले पता नहीं कहाँ चला गया था। वह गरीब और सादा आदमी बनकर लौटा था, सभी लोगों की तरह वह ज़मीन जोतने लगा और बाद में बुढ़ापे तक नेकी से जिया। वह तो उल्याना को अपनी मुँहबोली बेटी भी बनाना चाहता था, क्योंकि वह बूढ़ा और अकेला था, लेकिन जिन माँ-बाप ने उल्याना को गोद लिया था वे राजी नहीं हुए। वे जब से उल्याना को अपने घर लाये थे तब से एक पल भी उसके बिना नहीं जी सकते थे।

पाँच साल की होने पर उल्याना ने चीखना और डरकर भागना बन्द कर दिया। अब वह अपने सामने किसी दयालू और भली जान को देखकर बस उदास हो जाती थी, और अक्सर रोती रहती थी। पहले की ही भाँति उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की गहराई में उसका सच्चा स्वरूप दिखता था, जिस पर उसकी नज़रें टिकी होती थीं। लेकिन खुद वह सच्चाई नहीं देखती थी, उसे झूठ दिखता था। उसकी विश्वास भरी, उदास आँखें मानो आश्चर्य से स्तब्ध होकर संसार को देखती थीं और समझ नहीं पाती थीं कि क्या देख रही हैं।

जब उल्याना सात साल की हो गयी तो उसके माँ-बाप ने उसे सच-सच बता दिया कि वे उसके क्या लगते हैं, कि उसके सगे माँ-बाप पता नहीं कहाँ रहते हैं और यह भी नहीं पता कि वे ज़िन्दा हैं या नहीं। गोद लेनेवाले माता-पिता ने समझदारी से यह बात उसे बतायी। वे चाहते थे कि बच्ची उन्हीं से सच्चाई जाने, न कि दूसरों के मुँह से। पराये लोग कभी न कभी उसे यही बात बतायेंगे, लेकिन ऐसे बतायेंगे कि बच्चे का दिल ज़ख़्मी हो जायेगा।

"वे भी डरावने हैं?" उल्याना ने अपने सगे माँ-बाप के बारे में पूछा।

"नहीं, वे डरावने नहीं हैं," पिता ने कहा। "उन्होंने तुम्हें जन्म दिया है, उनसे प्यारा तुम्हारे लिए और कोई नहीं है।"

"बेटी, तुझे सच्चाई नहीं दिखती," माँ ने आह भरी। "तेरी आँखों में खोट है।"

तब से उल्याना और भी ज़्यादा ग़मगीन रहने लगी। गर्मियाँ बीत रही थीं। उल्याना ने सोच लिया थ कि पतझड़ आते न आते वह घर से चली जायेगी ताकि संसार में अपने सगे पिता और माता को ढूँढ़ ले, जो उसे छोड़ गये थे।

गर्मियाँ अभी पूरी बीती नहीं थी कि अधेड़ उम्र की एक किसान औरत पाँवों में छाल के जूते पहने और कन्धे पर रोटी की पोटली लटकाये उस गाँव में आयी। उसे देखते ही लगता था कि वह दूर से चली आ रही है और थक गयी हैं। रास्ते के कुएँ पर वह बैठ गयी, जिसके पास पुराना चीड़ का पेड़ था। उसने पेड़ पर नज़र डाली और फिर उठकर पेड़ के गिर्द ज़मीन टटोली, मानो बहुत पहले छोड़ी और भूली कोई

चीज़ ढूँढ़ रही हो। जूते बदलकर औरत उस घर तक गयी, जहाँ देम्यान रहता था, और उसकी दीवार के पास बैठ गयी।

कोई आ-जा नहीं रहा था, लोग खेतों में काम कर रहे थे। बड़ी देर तक वह अकेली बैठी रही, फिर एक अहाते में से बच्ची निकली। अनजान औरत को देखकर वह उसके पास चली आयी।

"तुम तो डरावनी नहीं हो," बच्ची ने कहा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में निर्मल ज्योति की चमक थी।

औरत ने बच्ची की ओर देखा, उसका हाथ पकड़ा, फिर उसे बाँहों में भरा और छाती से लगा लिया। बच्ची डरी नहीं और न ही चीखी। तब औरत ने बच्ची की एक आँख चूमी, फिर दूसरी और खुद रो पड़ी : वह अपनी बेटी को पहचान गयी—उसकी आँखों से, गर्दन पर तिल से, उसकी सारी देह से और अपने दिल की तेज़ हो गयी धड़कन से।

"मैं जवान थी, नासमझ थी, तुझे लोगों के आसरे छोड़ गयी," औरत कह रही थी। "अब तुझे लिवाने आयी हूँ।"

उल्याना औरत की नरम उष्म छाती से सट गयी और ऊँघने लगी।

"मैं तेरी माँ हूँ," औरत ने कहा और फिर से उल्याना की अधमुँदी आँखें चूमी।

माँ के चुम्बन से उल्याना की आँखों का खोट जाता रहा और उस दिन से उसे सूर्य से आलोकित संसार वैसे ही दिखने लगा जैसे सभी लोगों को दिखता है। वह शान्त भाव से अपनी निर्मल सुरमई आँखों से देख रही थी और किसी चीज़ से नहीं डर रही थी। उसे सब ठीक दिख रहा था—धरती पर जो सुन्दर और भला है वह उसे अब डरावना और कुरूप नहीं दिखता था, जो बुरा और निर्मम है वह अनुपम नहीं दिखता था, जैसा सगी माँ के बिना दिखता था।

परन्तु उल्याना की आँखों की गहराई में इस क्षण से कुछ भी दिखना बन्द हो गयाः उनमें सत्य का रहस्यमय रूप विलुप्त हो गया। उल्याना को इस बात का दुख महसूस नहीं हुआ कि उसकी आँखों में अब सच्चाई नहीं चमकती, उसकी सगी माँ भी यह जानकर दुखी नहीं हुई।

"लोगों को सच्चाई देखने की कोई ज़रूरत नहीं है," माँ ने कहा, "वे खुद ही सच्चाई जानते हैं, जो नहीं जानता वह देखकर भी यकीन नहीं करेगा।..."

उन्हीं दिनों मेरी बूढ़ी नानी चल बसी। वह मुझे उल्याना के बारे में और कुछ नहीं बता सकती थी। बहुत समय बीतने पर एक बार मैंने खुद उल्याना को देखा। वह सुन्दर युवती हो गयी थी, इतनी सुन्दर कि उसका सौन्दर्य लोगों के लिए ज़रूरत से अधिक अच्छा था, इसलिए लोग उसे सराहते थे, परन्तु उनका दिल उसके प्रति उदासीन रहता था।

वतन की पुकार यानी एक चिड़े का सफ़रनामा

बूढ़े वायलिन वादक को पुश्किन की मूर्ति के पैरों में खड़े होकर वायलिन बजाना अच्छा लगता था। यह मूर्ति मास्को मे त्वेरस्कोई बुलवार—सायादार चौड़े मार्ग—के आरम्भ में लगी हुई है। उसके चबूतरे पर कविताएँ अंकित है और चारों दिशाओं से संगमरमर की सीढ़ियाँ चबूतरे तक जाती हैं। इन सीढ़ियों पर चबूतरे तक चढ़कर बूढ़ा वायलिन वादक बुलवार की ओर मुँह करके खड़ा होता और गज से वायलिन के तार छेड़ता। तुरन्त ही मूर्ति के पास बच्चे और राह चलते लोग जमा हो जाते—वे सब संगीत की प्रतीक्षा में चुप हो जाते, क्योंकि संगीत लोगों को सुकून देता है, वह उन्हें सुख और उज्जवल जीवन की आस दिलाता है। बूढ़ा अपने वायलिन का बक्सा मूर्ति के सामने ज़मीन पर रख देता, वह बन्द होता, उसमें रई नामक अनाज की काली डबलरोटी और सेब रखा होता, ताकि जी होने पर वह खा सके।

आम तौर पर बूढ़ा संध्या समय यहाँ आता था, जब झुटपुटा होने लगता। उसके संगीत के लिये यही ज़्यादा अच्छा था कि दिन का कोलाहल शान्त हो जाये, अँधेरा घिरने लगे। अपने बुढ़ापे से उसे कोई परेशानी नहीं थी क्योंकि उसे सरकार से पेंशन मिलती थी और उसका गुजारा चल जाता था। लेकिन बूढ़ा इस विचार से उदास हो उठता था कि वह लोगों के लिये कोई नेक काम नहीं कर रहा, इसलिये वह अपनी मर्ज़ी से बुलवार पर वायलिन बजाने जाता था। वहाँ उसकी वायलिन के स्वर हवा में, साँझ के धुँधलके में गूँजते और बिरले ही सही, पर किसी न किसी आदमी के दिल की गहराइयों में उतर जाते, अपनी सुकोमल और साहसपूर्ण शक्ति से उसके मर्म को छूते सुन्दर, उदात्त जीवन जीने का आह्वान करते। कुछ श्रोता बूढ़े को देने के लिये पैसे निकालते, पर समझ न पाते कि कहाँ रखें : वायलिन का बक्सा बन्द होता और स्वयं वादक ऊपर चबूतरे पर, पुश्किन के प्रायः बगल में ही खड़ा होता। तब लोग दस्सियाँ और कोपेक बक्से के ढकने पर रख देते। लेकिन बूढ़ा संगीत की कला से अपनी ज़रूरत पूरी नहीं करना चाहता था : वायलिन को वापस बक्से में रखते हुए वह सारे सिक्के ज़मीन पर गिरा देता, उनकी कीमत की ओर कोई ध्यान न देता। वह देर से, कभी-कभी तो आधी रात को घर जाता, जब लोग बहुत कम रह जाते और कोई इक्का-दुक्का ही उसका संगीत सुनता। बूढ़ा तो एक अकेले आदमी के लिये भी वायलिन बजाता रह सकता था, वह जो संगीत रचना बजा रहा होता उसे पूरी करके ही छोड़ता जब तक कि श्रोता भावविह्वल होकर मन ही मन रोता हुआ

अँधेरे में विलीन न हो जाता। कौन जाने उसकी अपनी कोई दुखती रग हो, जिसे अब कला के गीत ने छेड़ दिया हो, या फिर उसे इस बात की ग्लानि हो उठी हो कि वह ज़िन्दगी में ग़लत रास्ते पर चलता आया है, या बस उसने थोड़ी पी रखी हो।..

पतझड़ के आखिरी दिनों में बूढ़े ने देखा कि हमेशा की तरह थोड़ी दूर ज़मीन पर एक चिड़ा आ बैठा। वायलिन वादक को आश्चर्य हुआ कि यह नन्हा पंछी अभी तक सोया नहीं, साँझ के अँधेरे में भी अपना पेट भरने का काम में व्यस्त है। वैसे तो अब दिन-दिन में पेट भर पाना मुश्किल ही थाः सारे पेड़ जाड़ों के लिए सो गये थे, कीड़े-मकोड़े मर गये थे, शहर में ज़मीन बूची और भूखी थी, क्योंकि घोड़े कम ही चलते थे और जमादार उनकी लीद तुरन्त साफ़ कर देते थे। वाकई, पतझड़ ओर जाड़े में चिड़ा अपना पेट कहाँ भरे? हवा भी शहर में बेदम है और मकानों के बीच कंजूसी से बहती है—चिड़ा जब अपने थके-माँदे पंख फैलता है तो हवा उसे सम्भाल नहीं रखती, सो उसे लगातार पंख चलाने पड़ते हैं, मेहनत करनी पड़ती है।

चिड़े ने बक्से का सारा ढकना छान लिया, पर उसे अपने मतलब की कोई चीज़ नहीं मिली। तब उसने पंजों से पैसों के सिक्के टटोले, सबसे छोटा, ताम्बे का एक कोपेक का सिक्का चोंच से उठाया और उसे लेकर पता नहीं कहाँ उड़ गया। मतलब, उसका आना बेकार नहीं रहा—कुछ न कुछ तो ले ही गया! जिये वह भी, दौड़-धूप करे, उसे भी तो अपना अस्तित्व बनाये रखना है।

अगली शाम को बूढ़े वायलिन वादक ने बक्सा खोल दिया ताकि अगर कलवाला चिड़ा आये तो बक्से में रखी डबलरोटी खा ले। मगर चिड़ा नहीं आया, शायद उसने किसी दूसरी जगह पेट भर लिया होगा और कोपेक उसके किसी काम नहीं आया होगा।

बूढ़े ने चिड़े का इन्तजार करना नहीं छोड़ा और वह चौथे दिन वह आ ही गया। बिना किसी रुकावट के चिड़ा बक्से में डबलरोटी पर जा बैठा और खाने लगा। बूढ़ा चबूतरे से उतरकर बक्से के पास गया और चुपके से नन्हें पंछी को देखने लगा। चिड़े के बड़े-से सिर पर रोयें अस्त-व्यस्त थे, बहुत से रोयें सफ़ेद पड़ चुके थे; थोड़ी-थोड़ी देर में वह इधर-उधर नज़र दौड़ा लेता था ताकि शत्रु और मित्र को ठीक-ठाक देख ले। उसकी शान्त, विवेकपूर्ण आँखें देखकर बूढ़ा हैरान रह गया। यह चिड़ा ज़रूर बहुत बूढ़ा था या अभागा था, क्योंकि अपने दुख, विपदा और लम्बी उम्र में उसने बहुत बुद्धि पा ली थी।

कुछ दिन तक चिड़ा बुलवार पर नहीं आया। इस बीच धवल हिमपात हो गया, हल्का पाला पड़ने लगा। बुलवार पर जाने से पहले बूढ़ा रोज़ाना नरम डबलरोटी चूरा करके बक्से में डाल लेता था। ऊँचे चबूतरे पर खड़े होकर वह कोमल धुन बजाता, पर उसकी नज़रें खुले बक्से पर, आस-पास की पगडण्डियों और क्यारियों में बेजान

पौधों पर लगी रहती। बूढ़ा चिड़े की राह देखता और उसके बिना उदास होता था: कहाँ है वह, कहाँ बैठकर सेक पा रहा है और ठण्डे हिम पर क्या चुग रहा है? पुश्किन के स्मारक के चारों ओर लगी बत्तियाँ शान्त, उजला प्रकाश फैलाती थीं, साफ़-सुथरे, सुन्दर लोग बिजली की रोशनी और हिम की चमक से आलोकित होते स्मारक के पास से गुज़रते, अपने किन्हीं बड़े और सुखदायी कामों को निबटाने दूर चले जाते। बूढ़ा वायलिन बजाता रहता, अपने मन में करुणा छिपाये—उस नन्हें कर्मठ पंछी के लिए, जो कहीं जी रहा था और कष्ट सह रहा था।

पाँच दिन और बीत गये, मगर चिड़ा पुश्किन की मूर्ति पर नहीं आया। बूढ़ा वायलिन वादक पहले की ही भाँति उसके लिए बक्सा खुला रखता, जिसमें चूरा की डबलरोटी होती। प्रतीक्षा से बूढ़े का मन थकने लगा और वह चिड़े को भूलने लगा। बूढ़े को अपने जीवन में बहुत कुछ सदा के लिए भलूना पड़ा था। वायलिन वादक अब डबलरोटी का चूरा नहीं करता था, वह साबूत ही बक्से में रखी होती, हाँ बक्से का ढकना अभी भी खुला छोड़ता था।

जाड़ा अपने पूरे ज़ोर पर आ चुका था। एक बार आधी रात के करीब हिम को ज़मीन से सटाकर उड़ाती हवा चलने लगी। बूढ़ा उस रात सबसे आखिर में शूबर्ट की संगीत रचना 'शीत पथ' बजा रहा था, उसक बाद घर जाकर आराम करने की सोच रहा था। तभी हवा और हिम के बीच से वही जाना-पहचाना बूढ़ा चिड़ा प्रकट हो गया। अपने सींकिया पंजों के बल पर पाले से जकड़े हिम पर बैठ गया और बक्से का चक्कर लगाने लगा, चारों ओर से उसे हवा के थपेड़े पड़ रहे थे, मगर वह उनकी ओर से उदासीन और निडर था। फिर वह उड़कर बक्से के अन्दर चला गया। वहाँ वह नरम डबलरोटी खाने लगा ओर उसमें दुबक ही गया। बड़ी देर तक, शायद पूरे आधे घण्टे तक वह डबलरोटी खाता रहा। इस बीच हवा ने सारा बक्सा हिम से भर दिया, मगर चिड़ा अभी भी हिम के भीतर हिल रहा था, अपने खाने पर मेहनत कर रहा था। मतलब उसे लम्बे अरसे के लिए पेट भरना आता था। बूढ़ा अपनी वायलिन और गज लिये बक्से के पास आया और बड़ी देर तक हवा के थपेड़े सहता यह इन्तज़ार करता रहा कि कब चिड़ा बक्सा खाली करे। आख़िर चिड़ा बाहर निकल आया, हिम की छोटी-सी ढेरी में उसने अपनी चोंच और पंख साफ़ किये, कुछ बोला और पैदल ही अपने रैनबसेरे को दौड़ चला, ठण्डी हवा में उसने उड़ना नहीं चाहा ताकि शक्ति व्यर्थ न गँवानी पड़े।

अगली शाम को वही चिड़ा फिर से पुश्किन स्मारक पर तशरीफ़ लाया; वह फौरन ही बक्से के अन्दर चला गया और वहाँ तैयार रखी डबलरोटी खाने लगा। चबूतरे पर खड़ा बूढ़ा उसे देख रहा था, अपनी वायलिन बजा रहा था और अपने दिल में उठती नेकी महसूस कर रहा था। उस शाम को मौसम शान्त था, मानो कल की चुभती हवा

से थक गया हो। पेट भरकर चिड़े ने बक्से में से ऊँची उड़ान भरी और हवा में छोटा-सा गीत गाया।...

सुबह बड़ी देर तक उजाला नहीं हुआ। बूढ़े वायलिन वादक की नींद खुली तो उसने सुना बाहर बर्फ़ीली आँधी गरज रही है। रेत जैसे सख्त हिम कण गली में उड़ रहे थे और उन्होंने दिन के उजाले को छिपा दिया था। रात को अँधेरे में ही खिड़की के काँच पर कमरे की नमी जम गयी थी और वहाँ किसी अनजाने जादुई देश के बर्फ़ीले वन और पुष्प खिल उठे थे। बूढ़ा प्रकृति के इस सजीव खेल को निहारने लगा, उसे लगा मनुष्य और संगीत की ही भाँति प्रकृति भी सुख पाने को आतुर है।

आज वह बुलवार पर नहीं जा सकेगा। आज आँधी गूँज रही है, वायलिन के स्वर बहुत क्षीण होंगे। तो भी शाम को बूढ़े ने सिर और गर्दन पर शाल लपेटकर ऊपर से ओवरकोट पहना, जेब में डबलरोटी चूरा करके डाली और बाहर चल दिया। इस आँधी में ठण्ड भी जम गयी लगती थी—इस जमी ठण्ड और तेज हवा के कारण साँस नहीं ली जाती थी। बड़ी मुश्किल से बूढ़ा अपनी गली में होता हुआ बुलवार तक पहुँचा। निर्जन बुलवार पर पेड़ों की ठण्ड से अकड़ी बूची टहनियाँ कड़कड़ा रही थीं, कड़े हिम की रगड़ से मूर्ति सीत्कार कर रही थी। बूढ़ा डबलरोटी का चूरा स्मारक की सीढ़ी पर रखना चाहता था, लेकिन उसने देखा कि ऐसा करना बेकार है : हवा तुरन्त ही उसे उड़ा ले जायेगी और जहाँ वह गिरेगा, वहाँ ऊपर से हिम से ढका जायेगा। तो भी वायलिन वादक ने अपनी डबलरोटी सीढ़ी पर रख दी और उसे हिमानी आँधी के धुँधलके में विलीन होते देखा। शाम को वायलिन वादक घर पर अकेला बैठा था। वह अपनी वायलिन बजा रहा था लेकिन सुननेवाला कोई नहीं था। रीते कमरे में संगीत में जान नहीं आ रही थी, वह एक अकेले वायलिन वादक के ही मन को छू रहा था, परन्तु यह काफ़ी नहीं था, या फिर उम्र के ढलने के साथ उसका मन भावों से रीता हो गया था। बाहर आँधी चल रही थी—बुरा हाल होगा ऐसे में चिड़ा का। बूढ़ा खिड़की के पास गया और ठण्ड से जमे शीशे के पार आँधी का शोर सुनने लगा। क्या ऐसे मौसम में भी बूढ़ा चिड़ा स्मारक पर आने से नहीं डरेगा ताकि बक्से में डबलरोटी खा सके?"

बूढ़ा चिड़ा हिमानी आँधी से नहीं डरा। मगर वह बुलवार पर जाने के लिए उड़ा नहीं, पैदल वहाँ गया क्योंकि ज़मीन पर हवा कुछ कम थी और हिम की जहाँ-तहाँ लगी ढेरियों व रास्ते की दूसरी चीज़ों के पीछे छिपा जा सकता था।

चिड़े ने मूर्ति के चारों ओर सारी जगह ध्यान से छानी, जहाँ आम तौर पर वायलिन का बक्सा रखा होता था वहाँ पंजों से हिम खोदकर भी देखा। कुछेक बार उसने जिस दिशा से हवा बह रही थी उस दिशा में उछलकर स्मारक की सीढ़ियों पर चढ़ने की कोशिश की, यह देखने के लिए कि हवा कोई रोटी का टुकड़ा या पुराना दाना तो

वहाँ नहीं उड़ा लायी; उन्हें पकड़कर वह निगल सकता था। लेकिन जैसे ही चिड़ा हिम से ज़रा-सा ऊपर उठता, अन्धड़ उसे अपनी लपेट में ले लेता और परे उड़ा ले जाता जब तक कि वह किसी पेड़ के तने या ट्राम के खम्भे से टकरा न जाता, तब चिड़ा जल्दी से जल्दी गिरता और हिम में गहरा धँस जाता ताकि गरमा ले और थोड़ा आराम कर ले। शीघ्र ही चिड़े ने कुछ पाने की उम्मीद छोड़ दी। उसने पंजों से हिम खोदकर गहरा बिल-सा बनाया और उसमें गठरी बनकर ऊँघने लगाः बस वह ठण्ड से अकड़कर मर न जाये, यह आँधी-तूफ़ान तो देर सवेर रुक ही जायेगा। नींद में भी चिड़ा सतर्क था, आँधी-तूफ़ान की गतियों पर ध्यान रख रहा था। बीच रात में और नींद में चिड़े ने पाया कि हिम की जिस ढेरी में वह सो रहा था वह उसे लिये सरकने लगी है, फिर उसके चारों ओर से हिम झड़ गया और चिड़ा तूफ़ान में अकेला रह गया।

वीरान ऊँचाई में चिड़ा कहीं दूर उड़ चला। यहाँ हिम भी नहीं था, खाली साफ़ हवा थी—अपनी घनीभूत शक्ति से ठोस हुई हवा। चिड़े ने कुछ सोचा, अपने शरीर को और भी कसी गठरी बना लिया और इस तूफ़ान की ही भाँति उसे उड़ाये ले जा रहा था। चिड़ा अब तूफ़ान में जीने का कुछ-कुछ अभ्यस्त हो गया, यहाँ उसके लिए जीना कुछ आसान ही था, क्योंकि वह अपने शरीर का भार अनुभव नहीं कर रहा था, उसे न उड़ने की ज़रूरत थी, न चलने की और न ही कोई चिन्ता करने की। तूफ़ान के धुँधलके में चिड़े ने इधर-उधर नज़र दौड़ायी—वह यह समझना चाहता था कि दिन है या रात। लेकिन धुँधलके में वह न प्रकाश देख पाया, न अन्धकार, फिर से गठरी बनकर सो गया—यह प्रयत्न करते हुए कि कम से कम उसके भीतर गरमाहट बनी रहे, पर और त्वचा भले ही ठण्डे पड़ जाये।

दूसरी बार जब चिड़ा जागा तब भी तूफ़ान उसे उड़ाये ले जा रहा था। अब वह उसका आदी होने लगा था, बस भूख की चिन्ता ही उसे कुछ परेशान कर रही थी। चिड़ा अब ठण्ड महसूस नहीं कर रहा था, पर गरमाहट भी नहीं थी—वह बस इस धुँधलके और सूनी हवा की धारा में काँप रहा था। वह फिर से सिमटकर गोल गठरी-सा बन गया, जब तक तूफ़ान गुजर नहीं जाता तब तक कोई अहसास न पाने की चेष्टा करने लगा।

इस बार चिड़ा जागा तो वह ज़मीन पर था, चारों ओर सफाई थी और गरमाहट भरी खामोशी थी। वह बड़े-से हरे पौधे की पत्तियों पर लेटा हुआ था। कोई अनजान पक्षी, जिन्हें उसने पहले कभी नहीं देखा था, लम्बे मधुर गीत गा रहे थे। चिड़ा चकित होकर थोड़ी देर तक उन्हें सुनता रहा। फिर उसने हिमानी आँधी से अस्त-व्यस्त अपने पर साफ़ किये, संवारे और पेट भरने चल दिया।

यहाँ शायद चिरतंन ग्रीष्म ऋतु का राज था, इसलिए खाने की कोई कमी नहीं थी। हर पौधे पर अपने फल थे। डण्ठलों पर पत्तियों के बीच दानों की बलियाँ लटक

रही थीं, या नरम चपटे दानोंवाली फलियाँ, या फिर बड़ी-बड़ी बेरियाँ उग रही थीं। चिड़ा सारा दिन चोंच मारता रहा, आखिर उसे अपने पर शर्म आने लगी, घिन होने लगी; उसे होश आया और उसने खाना बन्द कर दिया, हालाँकि थोड़ा-सा और खाना उसके पेट में समा सकता था।

एक पौधे के डण्ठल पर रात गुजारकर चिड़ा सुबह फिर से दाने चुगने लगा। कल तेज भूख के मारे उसे खाने के स्वाद का ही पता नहीं चला था, आज उसने देखा कि पौधों और झाड़ियों के सभी फल या तो बहुत मीठे हैं या कड़वे। पर ये फल बहुत पौष्टक थे, उनका गाढ़ा रस तो हल्की खुमारी लाता था। दूसरे दिन ही चिड़े का बदन कुछ-कुछ भर गया और चमकने लगा। रात को पेट में जलन उसे सताने लगी और तब चिड़ा हल्की-सी खटास लिए काली रोटी के लिए तरसने लगा। उसकी छोटी-सी अन्तड़ियाँ और पेट पुश्किन की मूर्ति के पास बूढ़े वायलिन वादक के बक्से में नरम डबलरोटी के लिए कसमसाने लगे।

शीघ्र ही इस शान्त धरती पर चिड़ा बिल्कुल उदास हो गया। मीठा और प्रचुर भोजन, उज्ज्वल वायु और फूलों की सुरभियाँ—यह सब उसे आकर्षित नहीं करता था। झाड़ियों की छाया में घूमते हुए उसे न कोई परिचित मिला था, न सगा-सम्बन्धीः यहाँ गौरे-गौरैयाँ नहीं रहते थे। यहाँ के भारी-भरकम पंछियों के रंग-बिरंगे, सुन्दर पर थे। वे आम तौर पर पेड़ों की टहनियों पर बैठे रहते थे और वहाँ बैठे अपने अनुपम गीत गाते थे, मानो उनके कण्ठों से प्रकाश-धारा बहती थी। ये पंछी विरले ही कुछ खाते थे, क्योंकि एक मोटी बेरी चुग लेने पर ही सारे दिन और सारी रात के लिए पेट भर जाता था। चिड़ा अपना एकाकीपन झेलता जी रहा था। झाड़ियों से थोड़ी ऊपर उड़ते हुए उसने इस सारे देश का चक्कर लगाया और चारों ओर पौधों के घने कुंज, रंग-बिरंगे फूल, मोटे-मोटे नाटे पेड़, उन पर गाते गर्वीले पंछी और नीला, निरभ्र आकाश ही देखा। यहाँ बारिश भी रात को ही आती थी, जब सब सो रहे होते ताकि खराब मौसम से किसी का चित्त परेशान न हो।

कुछ समय बीतने पर चिड़े न अपने रहने के लिए एक स्थायी स्थान ढूँढ़ लिया। यह एक जल-धारा का तट था, जिस पर बारीक रोड़ी फैली हुई थी। यहाँ कुछ नहीं उगता था, यहाँ धरती अपना ऐश्वर्य नहीं लुटाती थी और न ही इतनी आरामदेह थी।

तट की दरार में वहाँ एक साँप भी रहता था, पर उसके मुँह में न दाँत थे, न जहर। अपना पेट भरने के लिए वह केंचुए की तरह गीली मिट्टी निगलता था, मिट्टी के छोटे जीव उसके पेट में रह जाते थे, मिट्टी वापस बाहर निकल आती थी। चिड़े की इस साँप से दोस्ती हो गयी। वह अक्सर उससे मिलने आता, उसकी काली, सद्भावनापूर्ण आँखों में आँखें डालकर देखता। साँप भी चिड़े को देखता रहता। फिर चिड़ा वहाँ से चला जाता। साँप से मिल लेने पर उसे अपना अकेलापन इतना न काटता।

एक बार चिड़े को जल-धारा के किनारे काफ़ी आगे एक ऊँची चट्टान दिखी, जिस पर न कोई पेड़-पौधा था और न कोई घास-पात। चिड़ा उड़कर वहाँ जा पहुँचा। उसने तय किया कि अब रात को यहाँ, ऊँची चट्टान पर ही सोया करेगा। उसे उम्मीद थी कि कभी फिर से तूफ़ान आयेगा, उसे सोते हुए को चट्टान पर से उड़ा ले जायेगा और वापस उसके घर, त्वेरस्कोई बुलवार पर ले जायेगा। पहली रात उसे ठण्डी चट्टान पर सोने में मुश्किल हुई, लेकिन दूसरी रात वह आदी हो गया और चट्टान पर ऐसी गहरी नींद सो गया, जैसे कि अपने घोंसले में हो—तूफ़ान की आस उसे गरमाहट दे रही थी।

बूढ़ा वायलिन वादक समझ गया कि उसका वह सफेद रोयोंवाला चिड़ा हिमानी आँधी-तूफ़ान में मर गया है। हिमपात, ठण्डे दिन और तेज हवाएँ अक्सर उसे बुलवार पर नहीं जाने देती थी।

ऐसे दिनों में बूढ़ा घर पर बैठा रहता। उसके लिए एकमात्र मनबहलाव यह होता कि वह ठण्डे से जमी खिड़की को देखता रहता—खिड़की के शीशे पर जादुई देश के घने वनों के दृश्य बनते-मिटते रहते—इस जादुई देश में तो केवल मधुर गीत गाते पंछी ही रहते होंगे, बूढ़ा सोचता। वह यह कल्पना नहीं कर सकता था कि उसका चिड़ा हरियाली भरे फलते-फूलते देश में रह रहा है और रात को ऊँची चट्टान पर सोता है।... फरवरी महीना में वायलिन वादक ने एक छोटा-सा कछुआ खरीद लिया। उसने कहीं पढ़ा था कि कछुओं की उम्र लम्बी होती है। बूढ़ा यह नहीं चाहता था कि वह जीव जिससे उसके दिल को लगाव हो, उससे पहले मर जाये। बुढ़ापे में दिल के घाव नहीं भरते, यादें उसे सताती रहती हैं, बेहतर है वह कछुए से पहले मर जाये।

अब कछुए के साथ रहते हुए तो बूढ़ा पुश्किन के स्मारक पर बहुत ही कम जाने लगा। अब वह रोज़ शाम को घर पर वायलिन बजाता था, कछुआ अपनी धीमी चाल से कमरे के बीचोंबीच निकल आता था और संगीत सुनता था। वह अपना सिर एक ओर को, आदमी से परे, ज़रा-सा घुमा लेता था, मानो इसलिए कि ज़्यादा अच्छी तरह संगीत सुन सके। उसकी एक काली आँख विनम्र भाव से वायलिन वादक को देखती रहती। कछुआ शायद डरता था कि बूढ़ा वायलिन बजाना बन्द कर देगा और वह फिर से खाली फ़र्श पर अकेला ऊबने लगेगा। परन्तु बूढ़ा रात गये तक कछुए के लिए वायलिन बजाता रहता था, जब तक कि कछुआ थकावट और नींद के मारे अपना नन्हा-सा सिर फ़र्श पर टिका न देता। जब कछुए की आँखें पलकों की झुर्रियों से बन्द हो जातीं तो बूढ़ा उसे डिब्बे में लिटा देता और खुद भी विश्राम के लिए लेट जाता। लेकिन वायलिन वादक को नींद ठीक से नहीं आती थी। उसके शरीर में कहीं टीस उठती, कहीं दर्द होता, तो कभी दिल डूबने लगता। अकसर वह इस भय से जाग जाता कि मर रहा है। लेकिन पता चलता कि वह अभी ज़िन्दा है और

खिड़की के बाहर, मास्को की गली में शान्त रात जारी है। मार्च महीने में दिल की धड़कन रुकती महसूस होने पर बूढ़े की आँख खुली और उसने ज़ोरदार हवा चलने की आवाज सुनी; खिड़की के काँच पर जमी सारी बर्फ़ पिघल गयी थी; यह हवा, शायद, दक्षिण से, वसन्ती दिशा से आ रही थी। बूढ़े को वह चिड़ा याद आया और अफ़सोस हुआ कि वह मर गया है : जल्दी ही गर्मियाँ आ जायेंगी, बुलवार पर पेड़ जी उठेंगे—चिड़ा अभी और जी सकता था। जाड़ा आता तो बूढ़ा चिड़े को अपने कमरे में ले आता, यहाँ चिड़े की कछुए से दोस्ती हो जाती और वह पेंशनयाफ़्ता बूढ़े की तरह आराम से रहता हुआ जाड़ा काट लेता।... बूढ़ा फिर से सो गया—इस ख़्याल से तसल्ली पाकर कि उसके पास जीता-जागता कछुआ है और यही काफ़ी है।

चिड़ा भी इस रात को सो रहा था, हालाँकि तूफ़ानी दक्खिनी हवा उसे उड़ाये लिये जा रही थी। पलांश को ही वह जागा था जब तूफ़ान के झोंके ने उसे चट्टान से उठा लिया था, मगर यह देखकर वह खुश हो गया और तुरन्त ही गरमाहट के लिए गठरी बनकर फिर से सो गया। फिर जब चिड़ा जागा तो उजाला हो चुका था। हवा अपनी प्रचण्ड शक्ति से उसे दूर देश को लिये जा रही थी। चिड़ा इस गति और ऊँचाई से नहीं डरता था; ज़रा-सा हिलने-डुलने पर उसे लगा जैसे कि तूफ़ानी हवा ने लसीले, गुँधे आटे की तरह उसे लपेट रखा है। चिड़े ने चहककर अपने आप से कुछ कहा और महसूस किया कि उसे भूख लगी है। उसने सावधानी से इधर-उधर नज़र दौड़ायी और देखा कि उसके गिर्द हवा में कई चीज़ें हैं। उन्हें गौर से देखने पर वह पहचान गया : ये गरम देश की मोटी-मोटी बेरियाँ, दाने, फलियाँ और पूरी की पूरी बालियाँ थीं, चिड़े से थोड़ी दूर तो पूरी झाड़ियाँ और डालें तक उड़ रही थीं। मतलब, हवा केवल चिड़े को ही नहीं ले जा रही। एक छोटा-सा दाना चिड़े के बिल्कुल पास ही उड़ रहा था, लेकिन हवा के दबाव के कारण उसे पकड़ पाना मुश्किल था: चिड़े ने कुछेक बार चोंच बढ़ायी, मगर दाना नहीं चुग पाया, क्योंकि तूफ़ानी हवा दीवार बन रही थी। तब चिड़ा अपनी धुरी पर घूमा, उसने पंजे ऊपर कर लिये, एक पंख खोल दिया और तुरन्त ही हवा उसे एक ओर ले गयी—पहले पास के दाने तक—चिड़े ने तुरन्त ही उसे चुग लिया, और फिर वह दूर की बेरियों और बालियों तक भी पहुँच गया। उसने अच्छी तरह पेट भर लिया और फिर उसने सोने की सोची। यहाँ उसकी मौज थी : बगल में ही ढेरों खाना था और तूफ़ानी हवा में वह न ठण्ड महसूस कर रहा था, न गर्मी। चिड़ा सोता और जागता, जागने पर फिर से पंजे ऊपर करके हवा में लेट जाता ताकि आराम से ऊँघता रहे। बीच-बीच में वह आस-पास की हवा में से तृप्ति से खाना खाता; कभी-कभार कोई बेरी या मीठे दानोंवाली फली चिड़े के बदन से आ लगती, तब उसके पास यही चारा होता कि उसे चुगकर निगल जाये। पर चिड़े को अब यह डर भी लगने लगा था कि यह हवा एक न एक दिन बहनी बन्द हो जायेगी, जबकि वह तूफ़ान में जीने और उससे प्रचुर आहार पाने का आदी

हो गया है। वह अब बुलवार पर सारा दिन कुछ पाने की तलाश में भटकना, जाड़ों में ठिठुरना और हवा से विपरीत दिशा में उड़ने में अपनी शक्ति व्यर्थ गँवाने के बजाय सूनी सड़क पर पैदल चलना नहीं चाहता था। उसे बस इस बात का अफ़सोस था कि इस प्रबल पवन में हल्की खटास लिये काली डबलरोटी का चूरा नहीं है—या तो निरा मिठा भोजन है, या निरा कड़वा। चिड़े के सौभाग्य से तूफ़ान बहुत देर तक चलता रहा, जागने पर वह फिरसे अपने को भारहीन महसूस करता और अपने जीवन से सन्तुष्ट होकर कुछ गुनगुनाने की कोशिश करता।

वसन्त में प्रायः हर शाम को बूढ़ा वायलिन वादक पुश्किन के स्मारक पर वायलिन बजाने जाता। वह कछुए को अपने साथ ले जाता और अपने पास ही उसे बिठा देता। जब तक बूढ़ा वायलिन बजाता रहता कछुआ निश्छल बैठा संगीत सुनता रहता, जब बूढ़ा बीच में रुकता तो कछुआ इंतजार करता कि कब वह आगे बजायेगा। पहले की ही भाँति स्मारक के सामने ज़मीन पर वायलिन का बक्सा रखा होता, लेकिन उसका ढकना अब हमेशा बन्द होता, क्योंकि बूढ़े चिड़े के आने की उम्मीद वायलिन वादक ने छोड़ दी थी।

एक वसन्ती शाम को अचानक तेज़ हवा चलने लगी और हिमपात होने लगा। बूढ़े ने कछुए को अपने कोट में छिपाया, वायलिन बक्से में रखी और घर चल दिया। घर पर उसने, सदा की भाँति, कछुए को खाना खिलाया और फिर उसे रूई बिछे डिब्बे में लिटा दिया। इसके बाद उसने अपने लिए चाय बनानी चाही ताकि पेट में कुछ गरम जाये और शाम का वक्त भी कट जाये। लेकिन स्टोव में तेल खत्म हो गया था और बोतल भी खाली थी। बूढ़ा मिट्टी का तेल खरीदने निकला। बाहर अब हवा नहीं चल रही थी, हल्का हिमपात हो रहा था। पास की दुकान बन्द थी, सो बूढ़े को दूर की दुकान पर जाना पड़ा।

मिट्टी का तेल खरीदकर बूढ़ा वापस घर को चला। ज़मीन पर पड़ा ताजा हिम पाँवों तले पिघल रहा था। एक पुराने मकान के पास दो लड़के खड़े थे, उनमें से एक ने बूढ़े से कहा :

"बाबा-बाबा, यह चिड़िया खरीद लो... हमारे पास सिनेमा के लिए पैसे कम पड़ रहे हैं!"

वायलिन वादक रुका :

"लाओ," उसने कहा। "तुमने ली कहाँ से?"

"अपने आप आसमान से टपक पड़ी थी," लड़के ने जवाब दिया और दोनों हाथों में बन्द चिड़िया बूढ़े की ओर बढ़ा दी।

चिड़िया शायद मरी हुई थी। बूढ़े ने उसे जेब में रखा, लड़के को बीस कोपेक दिये और आगे चल दिया।

घर पर वायलिन वादक ने चिड़िया को जेब से निकाला। बूढ़ा चिड़ा उसके हाथ में था; उसकी आँखें बन्द थी, पंजे मुड़े हुए थे, एक पंख लटका हुआ था। यह कहना मुश्किल था कि चिड़ा ठण्ड से अकड़ा हुआ है या बिल्कुल ही मर गया है। बूढ़े ने सोने के लिए पहनी लम्बी, कुर्तेनुमा कमीज तले उसे दुबका लिया—या तो सुबह तक वह गरमाहट पाकर जी उठेगा, या फिर कभी नहीं जागेगा। चाय पीकर बूढ़ा सम्भलकर बगल पर लेट गया ताकि चिड़ा दब न जाये।

जल्दी ही बूढ़ा ऊँघने लगा, पर फौरन जाग पड़ा : उसकी क़मीज़ तले चिड़ा हिला था और उसने बूढ़े के बदन पर चोंच मारी थी। "ज़िन्दा है!" बूढ़े इंसान ने सोचा। "मतलब इसका दिल मौत के चंगुल से छूट गया है!" और उसने चिड़े को अपनी क़मीज़ के अन्दर की गरमाहट से बाहर निकाला।

जी उठे पंछी को वायलिन वादक ने कछुए के डिब्बे में सोने के लिए रख दिया। कछुए के डिब्बे में रूई बिछी हुई थी, चिड़े के लिए नरम बिछौना रहेगा। सुबह तड़के बूढ़ा उठ गया और देखने लगा कि चिड़ा वहाँ कछुए के पास क्या कर रहा है।

चिड़ा अपने पतले पंजे ऊपर किये रूई पर लेटा हुआ था, कछुआ अपनी गर्दन निकालकर दया और धीरज भरी आँखों से उसे देख रहा था। चिड़ा मर गया था और सदा के लिए भूल गया था कि कभी इस संसार में जिया था।

शाम को बूढ़ा वायलिन वादक बुलवार पर नहीं गया। बक्से में से वायलिन लेकर वह बजाने लगा—उसका संगीत कोमल और सुखद था। कछुआ कमरे के बीचोंबीच निकल आया और अकेला ही मग्न सुनने लगा। परन्तु बूढ़े के दुखते दिल को सान्त्वना दिलाने के लिए संगीत में किसी चीज़ का अभाव था। तब उसने वायलिन वापस रख दी और रोने लगा।

करिश्मा

1

अलेक्सान्द्र वसील्योविच माल्त्सेव तोलुबेयेव नगर के डिपो का माना हुआ इंजन-ड्राइवर था।

वह अभी तीस साल का ही था कि उसने प्रथम श्रेणी के इंजन-ड्राइवर का दर्जा प्राप्त कर लिया था और काफ़ी समय से एक्सप्रेस गाड़ियाँ चला रहा था। जब हमारे डिपो में "इस सीरीज़ का यात्री-गाड़ी का पहला शक्तिशाली इंजन आया, तो यह बिल्कुल उचित था कि इसे चलाने के लिए माल्त्सेव को नियुक्त किया गया। डिपो में ही फ़िटर का काम करनेवाला अधेड़ उम्र का फ़्योदोर पेत्रोविच द्राबानोव उसका सहायक बनाया गया। लेकिन उसने शीघ्र ही ड्राइवरी की परीक्षा पास कर ली और एक दूसरे इंजन पर काम करने चला गया और मैं माल्त्सेव के ब्रिगेड में उसकी जगह काम करने आ गया। मैं पहले भी सहायक का काम कर चुका था, पर केवल पुराने, कम शक्तिशाली इंजन पर ही।

मैं अपने नये काम से बहुत ख़ुश था। उस समय हमारे रेलवे-मंडल में "इस" सीरीज़ का एक ही इंजन था और उसे देखते ही मेरा मन बाग़-बाग़ हो उठता था। मैं उसे घण्टों टक्टकी बाँधे देखता रह सकता था और मेरे अन्तर में एक असामान्य, मर्मस्पर्शी आनन्द उमड़ने लगता था। वैसा ही जैसा कि बचपन में पहली बार पुकिन की कविताओं को पढ़ने से अनुभव हुआ था। इसके अलावा, मैं प्रथम श्रेणी के इंजन-ड्राइवर के ब्रिगेड में काम करना चाहता था, ताकि उससे भारी एक्सप्रेस गाड़ियाँ चलाने की कला सीख सकूँ।

अलेक्सान्द्र वसील्येविच ने अपने ब्रिगेड में मेरी नियुक्ति को बिल्कुल शान्त भाव से लिया : स्पष्टतया उसे इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था कि उसका सहायक कौन है।

पहले दौरे पर चलने से पहले मैंने हमेशा की तरह इंजन की भली-भाँति जाँच की, सभी छोटे-बड़े यंत्रों को तब तक जाँचता- परखता रहा, जब तक पूरी तरह यक़ीन नहीं हो गया कि इंजन यात्रा के लिए तैयार है। जब मैं काम कर रहा था, तो अलेक्सान्द्र वसील्येविच बड़े ध्यान से देख रहा था कि मैं क्या कर रहा हूँ। फिर भी मेरे बाद उसने इंजन को एक बार और ख़ुद जाँचा जैसे कि उसे मुझ पर भरोसा न हो।

यह हमारे काम का एक आम ढर्रा बन गया और मैं इस बात का आदी हो गया कि अलेक्सान्द्र वसील्येविच मेरे कामों में दख़ल देगा ही, यद्यपि मुझे मन ही मन यह बहुत अखरता था। लेकिन आम तौर पर, जैसे ही हम अपने दौरे पर चलते थे, मैं अपनी सारी व्यथा भूल जाया करता था। चलते इंजन की स्थिति दिखानेवाले यंत्रों से, बायें इंजन के काम और सामने पटरियों से अपना ध्यान हटाकर मैं माल्त्सेव को देखने लगता था। वह गाड़ी को अपने फ़न के उस्ताद जैसे निर्भीक आत्मविश्वास, एक ऐसे अनुप्राणित कलाकार की एकाग्रता से चलाता था, जो सम्पूर्ण बाह्य दुनिया को अपनी आन्तरिक अनुभूतियों में आत्मसात करके उस पर छा जाता है। वह मानो सूनी-सूनी और उड़ती-उड़ती नज़रों से यों ही सामने देखता रहता था, लेकिन मुझे मालूम होता था कि वह दूर तक आगे की पटरियों तथा हमारी तरफ़ भागती आती प्रकृति को भली-भाँति देख रहा है। यहाँ तक कि पुश्ते पर बैठी और वायु-वेग से दौड़ती गाड़ी की चपेट में आयी गौरेया भी उसकी निगाह से नहीं चूकती थी और वह क्षण भर को अपना सिर मोड़कर यह देख लेता था कि हमारे पीछे उस चिड़िया का क्या हुआ, वह किधर को उड़ गयी।

यदि हम कभी नियत समय पर नहीं पहुँच पाते थे, तो इसमें हमारा अपना कोई दोष नहीं होता था। बल्कि, हम तो प्रायः निर्धारित समय से पहले ही पहुँच जाया करते थे और हमें ऐसे स्टेशनों पर रुकने के लिए बाध्य होना पड़ता था, जहाँ हमें रुकना नहीं होता था, ताकि हम पुनः निर्धारित समय के अनुसार चल सकें।

हम आम तौर पर काम करते हुए बात नहीं करते थे। कभी-कभार अलेक्सान्द्र वसील्येविच मेरी ओर मुड़े बिना ही बायलर को पेचकश से तब खटखटा देता, जब वह इंजन के कार्य में उत्पन्न किसी गड़बड़ी की ओर मेरा ध्यान खींचना चाहता या इंजन के कार्य में अचानक हेर-फेर के लिए मुझे सावधान कर देना चाहता। मैं हमेशा ही अपने वरिष्ठ साथी के मूक आदेशों को समझ लेता था और बड़ी ही लगन से काम करता था। लेकिन ड्राइवर मुझसे तथा फ़ायरमैन से हमेशा कटा-कटा ही रहता और जब कभी गाड़ी स्टेशनों पर रुकती, तो वह सदा स्नेहक-प्रेसों, शाफ़्ट-बोल्टों, मुख्य एक्सेल-बक्सों, आदि को जाँच लेता। इस बात पर कोई ध्यान दिये बिना कि मैंने अभी-अभी किसी पुर्ज़े को जाँचा है और उस पर तेल लगाया है, वह फिर से उसे जाँचता तथा तेल लगाता, मानो उसके लिए मेरे कार्य का कोई महत्त्व ही न हो।

"इस क्रास-हेड को तो मैं जाँच चुका हूँ, अलेक्सान्द्र वसील्येविच," एक दिन मैंने उससे तब कहा जब वह उसे मेरे देखने के बाद जाँचने लगा।

"लेकिन मैं इसे ख़ुद देख लेना चाहता हूँ," माल्त्सेव ने मुस्कराते हुए जवाब दिया। उसकी मुस्कराहट ऐसी उदासी-भरी थी कि मैं चकरा-सा गया।

आगे चलकर मैं उसकी उदासी के अभिप्राय और हमारे प्रति उनकी निरन्तर उपेक्षा के कारण को समझ गया। वह इस कारण अपने को हमसे ऊँचा मानता था कि इंजन को हमसे बेहतर समझता था और उसको विश्वास नहीं था कि मैं या कोई और उसके फ़न के भेद – गाड़ी की चपेट में आती गौरेया और साथ ही सामने सिग्नल को देखने तथा पटरियों, गाड़ी के भार और इंजन की शक्ति पर बराबर नज़र रखने में समर्थ होने के भेद – को सीख सकता है। बेशक, माल्सेव को मालूम था कि अपने परिश्रम और जोश में हम उसे पछाड़ भी सकते हैं, पर वह इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकता था कि हम इंजन को उससे कहीं अधिक प्यार कर सकते हैं या गाड़ी को उससे बेहतर ढंग से चला सकते हैं। "बेहतर असम्भव है," वह सोचता था। इसीलिए वह हमारे साथ उदासी महसूस करता था ; एकाकीपन की भाँति उसका फ़न भी उसके मन पर भारी बोझ बन गया था और वह यह नहीं जानता था कि अपनी बात को कैसे समझाये, ताकि हम उसे समझ सकें।

और यह सही भी है कि हम उसके कौशल के राज़ को समझ नहीं सके। एक दिन मैंने उससे पूछा कि क्या मैं ख़ुद गाड़ी चला सकता हूँ? उसने मुझे 40 किलोमीटर तक गाड़ी चलाने की इजाज़त दी और ख़ुद सहायक की सीट पर जाकर बैठ गया। 20 किलोमीटर की दूरी तय करते न करते गाड़ी निर्धारित समय से चार मिनट पीछे हो गयी और लम्बी ढालों से उतरते हुए मैं उसे 30 किलोमीटर प्रति घण्टा से अधिक रफ़्तार से नहीं चला पा रहा था। मेरे बाद उसने पुनः गाड़ी अपने हाथों में ले ली। उसने ढालों पर रफ़्तार को बढ़ाकर 50 किलोमीटर प्रति घण्टा किया और मोड़ों पर इंजन ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। शीघ्र ही उसने वह समय पूरा कर दिया जो मैंने गँवाया था।

2

अगस्त से जुलाई तक लगभग साल भर मैंने माल्सेव के सहायक का काम किया और 5 जुलाई को माल्सेव ने एक्सप्रेस गाड़ी के ड्राइवर के रूप में अपना अन्तिम दौरा पूरा किया।

हम जो गाड़ी चला रहे थे, उसमें दस यात्री-डिब्बे जुड़े थे और वह निर्धारित समय से चार घण्टे पीछे चल रही थी। स्वयं स्टेशनमास्टर इंजन तक आये और अलेक्सान्द्र वसील्येविच से विलम्ब को यथासम्भव – कम से कम तीन घण्टे तक – कम करने के लिए आग्रह किया, वरना, एक ख़ाली मालगाड़ी को बग़ल की पटरी पर निकालना मुकिल हो जायेगा। माल्सेव ने खोये समय को पूरा करने का आवासन दिया और हम चल पड़े।

शाम के आठ बज रहे थे, लेकिन गर्मी का दिन था कि बढ़ता ही जा रहा था और सूर्य अपने प्रातःकालीन यौवन से चमक रहा था। अलेक्सान्द्र वसील्येविच ने मुझसे बायलर के दबाव को अधिकतम दबाव से सिर्फ़ आधा ऐटमौस्फ़ियर कम रखने को कहा।

आधे घण्टे बाद ही हम खुली स्तेपी में हल्के, समतल विस्तार पर आ गये। माल्सेव ने गाड़ी की रफ़्तार बढ़ाकर 90 किलोमीटर प्रति घण्टा कर दी और वह इसे कभी कम नहीं होने देता था। समतल मैदानों और छोटे मोड़ों पर तो वह रफ़्तार को 100 किलोमीटर तक बढ़ा देता था। चढ़ाइयों पर मैंने दबाव को वहाँ तक बढ़ा दिया जहाँ तक वह बढ़ सकता था और जब मैंने देखा कि भाप का दबाव कम हो रहा है, तो फ़ायरमैन को हाथों से कोयला फ़ायर-बक्स में लगाने के लिए बाध्य किया, ताकि वह स्टोकर-यंत्र को मदद दे सके।

माल्सेव पूरे शाफ़्ट-आर्क पर रेगुलेटर को घुमाकर और खिर्स-शैफ़्ट को बिल्कुल बन्द किये हुए गाड़ी चला रहा था। हम अब उस दिशा में बढ़ रहे थे, जिधर क्षितिज पर गर्जन-मेघ उमड़ आया था। हमारी तरफ़ से पड़ते सूर्य के प्रकाश से मेघ चमक रहा था और इसके बीच में द्वेषपूर्ण, प्रचण्ड बिजली रह-रहकर लपलपाते हुए कौंध जाती थी। हमने बिजली की तलवार को सीधे ख़ामोश, दूरवर्ती ज़मीन पर सवेग प्रहार करते हुए देखा और हम व्यग्रतापूर्वक उस दूरवर्ती ज़मीन की ओर मानो उसकी रक्षा में तूफ़ानी गति से दौड़ते जा रहे थे। अलेक्सान्द्र वसील्येविच स्पटतः उस दृय से मंत्रमुग्ध-सा हो गया था; उसने कैबिन से अपना सिर बाहर निकाला और सामने की ओर नज़रें फेंकीं; धुएँ, आग और दूरी से अभ्यस्त उसकी आँखें अब उत्तेजना से चमक उठी थीं। उसे मालूम था कि हमारा इंजन शक्ति और कार्य में तूफ़ान से भी लोहा ले सकता है और उसे इस चीज़ में गर्व का भी अनुभव हुआ।

शीघ्र ही हमने देखा कि स्तेपी से धूल-भरा तूफ़ान द्रुत गति से हमारी ओर बढ़ता चला आ रहा है। इसका मतलब था कि तूफ़ान गर्जन-मेघ के साथ आ रहा था। चारों ओर अँधेरा घिरने लगा : सूखी धूल और स्तेपी के बालू का अन्धड़ सनसनाते हुए इंजन से टकरा रहा था और कहीं कुछ दिखायी नहीं देता था। मैंने जेनरेटर को चालू कर दिया और इंजन की हेडलाइट जला दी। तप्त, धूल-भरे तूफ़ान के, जिसका जपेर गाड़ी के उसी की ओर चलने की वजह से दुगुना हो गया, झोंकों के कैबिन में भर जाने तथा दहन गैसों और पहले से ही जम चुकी धुन्ध की वजह से अब साँस लेना भी मुकिल हो रहा था। इंजन हेडलाइट के प्रकाश से घने, दमघोंटू अँधेरे को चीरते हुए आगे बढ़ रहा था। हमारी रफ़्तार गिरकर 60 किलोमीटर प्रति घण्टा हो गयी। हम मानो यंत्रवत काम कर रहे थे और सामने देख रहे थे।

सहसा हवा-रोक शीशे पर एक बड़ी बूँद गिरी और गर्म हवा में जज़्ब होकर सूख गयी। फिर तत्काल एक नीली रोशनी मेरी पलकों के क़रीब चमकी और मुझे चीरते हुए मेरे थर्राते हृदय तक उतर गयी। मैंने लपक कर इन्जेक्टर ह्वील को पकड़ लिया, लेकिन मेरे दिल में अचानक उठा दर्द तब तक मिट चुका था और मैंने अविलम्ब अपनी नज़र माल्त्सेव पर डाली – वह सामने देख रहा था तथा गाड़ी चला रहा था, उसका चेहरा जैसे का तैसा था।

"वह क्या चीज़ थी?" मैंने फ़ायरमैन से पूछा।

"बिजली," उसने कहा । "हम पर निशाना लगाया था, परा ज़रा चूक गयी।" माल्त्सेव हमारी बात सुन रहा था।

"कैसी बिजली?" उसने धीमे से पूछा।

"अभी-अभी तो गिरी," फ़ायरमैन ने कहा।

"मैंने नहीं देखी," माल्त्सेव ने कहा और फिर बाहर की ओर देखने के लिए अपने चेहरे को मोड़ा।

"नहीं देखी?" फ़ायरमैन ने विस्मयपूर्वक कहा। "वह इतनी ज़ोर से गिरी कि मैंने तो सोचा कि बायलर ही फट जायेगा और उसने देखी ही नहीं।"

मेरे मन में भी सन्देह हो रहा था कि वह बिजली थी या नहीं।

"पर गर्जन कहाँ है?" मैंने पूछा।

"हम गर्जन से आगे निकल चुके हैं," फ़ायरमैन ने स्पष्ट करते हुए कहा। "मेघ-गर्जन हमेशा बिजली चमकने के बाद होता है। जब तक मेघ फटा, आसमान में गड़गड़ाहट हुई, तब तक हम आगे बढ़ चुके थे। शायद पीछे के यात्रियों ने इसे सुना हो।"

कुछ आगे आने पर हम मूसलाधार बारिश में पड़ गये लेकिन शीघ्र ही उससे गुज़रकर ख़ामोश, अँधेरी स्तेपी में आ निकले, जिसके ऊपर शान्त गर्जन-मेघ अपना चमत्कार दिखाकर निश्चल खड़े थे।

अँधेरा पड़ गया और इसके साथ ही शान्त रात उतर गयी। गीली ज़मीन, बारिश और तूफ़ान से धुली-निखरी घासों और फ़सलों से भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी और हम समय पूरा करने के लिए तूफ़ानी वेग से दौड़ते जा रहे थे।

मैंने देखा कि अब गाड़ी पर माल्त्सेव की पकड़ कुछ ढीली पड़ गयी थी। मोड़ों पर हम झटके खा-खा जाते थे और हमारी रफ़्तार कभी 100 किलोमीटर तक बढ़ जाती थी, तो कभी गिरकर 40 किलोमीटर तक आ जाती थी । मैंने सोचा कि वह शायद बहुत थक गया हो और इसी वजह से उसे टोका भी नहीं, हालाँकि ड्राइवर के ठीक ढंग से काम न करते मुझे फ़ायर-बक्स और बायलर को सुव्यवस्थित रूप से

चालू रखना बड़ा मुकिल हो रहा था। फिर भी आधे घण्टे में ही हम पानी के लिए रुकनेवाले थे और अलेक्सान्द्र वसील्येविच को कुछ खाने और आराम करने का समय मिल जायेगा। चालीस मिनट समय तो हम पूरा भी कर चुके थे और दौरे की समाप्ति पर कम से कम एक घण्टा और पूरा कर लेंगे।

जो कुछ भी हो, मुझे माल्त्सेव की थकान पर चिन्ता हो रही थी और अब मैं स्वयं ही पटरी और सिग्नलों पर कड़ी नज़र रखने लगा। मेरी बग़ल में बायें इंजन के ऊपर एक बिजली का बल्ब जल रहा था, जिससे शाफ़्ट-यंत्रों पर रोशनी पड़ रही थी। मैं बायें इंजन के तेज़, विश्वस्त कार्य को भली-भाँति देख रहा था, लेकिन तभी रोशनी कुछ धुँधली हुई, और मोमबत्ती की तरह मद्धिम-मद्धिम जलने लगी। मैंने कैबिन में इधर-उधर झाँका और देखा कि वहाँ सभी ही बल्ब अपनी चौथाई शक्ति से जल रहे थे और उनकी मन्द रोशनी में उपकरण बड़ी कठिनाई से ही दिखायी दे रहे थे। यह बड़ी विचित्र बात थी कि माल्त्सेव ने इस बार अपने पेचकश से खटखटाकर मेरा ध्यान नहीं खींचा जैसा कि वह आम तौर पर इंजन में कोई गड़बड़ी पैदा हो जाने पर करता था। साफ़ था कि जेनरेटर परिक्रमों की ठीक-ठीक संख्या नहीं बता रहा था और वोल्टता गिर गयी थी। मैं वाष्पपाइप के ज़रिये जेनरेटर को तेज़ करने लगा और इसमें काफ़ी समय बर्बाद किया, पर वोल्टता तेज़ नहीं हुई।

तभी लाल रोशनी का धुँधला बादल उपकरण-डायलों और कैबिन की छत से गुज़रा। मैंने बाहर झाँककर देखा।

सामने अँधेरे में – यह अनुमान लगाना कठिन था कि कितनी दूरी पर – एक लाल प्रकाश-पुंज पटरी के आर-पार डोल रहा था। मुझे मालूम नहीं पड़ रहा था कि वह क्या चीज़ है, लेकिन मैं इतना समझ ही गया था कि मुझे क्या करना है।

"अलेक्सान्द्र वसील्येविच!" मैं चिल्लाया और रुक जाने के लिए तीन सीटियाँ दीं।

गाड़ी के पहियों के नीचे जोड़पट्टियाँ कसककर टूटती जा रही थीं। मैं झपटकर माल्त्सेव के पास गया। उसने अपना चेहरा मेरी तरफ़ मोड़ा और शान्त, सूनी आँखों से मुझे देखा। गतिमापी यंत्र की सुई 60 किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ़्तार दिखा रही थी।

"माल्त्सेव! हम जोड़पट्टियों को चूर-चूर किये दे रहे हैं," मैंने चिल्लाकर कहा और ह्वील को पकड़ने के लिए अपने हाथ बढ़ा दिये।

"पास मत फटकना!" वह चिल्लाया और उसकी आँखें गतिमापी यंत्र के ऊपर बल्ब के मद्धिम प्रकाश को प्रतिबिम्ब करते हुए चमक उठीं।

उसने फ़ौरन संकटकालीन ब्रेक लगाया और रिवर्स को पीछे कर दिया।

मैं बायलर से जा टकराया और सुना कि पटरियों पर छीलते हुए पहियों की कर्कश ध्वनि कैसी थी।

"माल्सेव!" मैंने कहा, "हमें सिलिण्डरों की टोंटियाँ खोल देनी चाहिए वरना इंजन टूट जायेगा।"

"कोई ज़रूरत नहीं है! नहीं टूटेगा," माल्सेव ने उत्तर दिया।

हम आ रुके। मैंने इन्जेक्टर से बायलर में पानी भरा और कैबिन से बाहर देखा। उसी पटरी पर हमसे लगभग दस मीटर आगे एक इंजन खड़ा था, जिसका टेंडर हमारे एकदम सामने था। टेंडर पर एक आदमी खड़ा था, उसके हाथ में सिरे पर लाल दहकती लम्बी कुरेदनी थी, जिसे वह आगे बढ़ती एक्सप्रेस गाड़ी को रोकने के लिए हिला रहा था। यह इंजन स्टेशनों के बीच रुकी एक मालगाड़ी का पीछेवाला सहायक इंजन था।

इसका मतलब यह था कि जब मैं पटरी पर नज़र न रखते हुए जेनरेटर को ठीक कर रहा था, तो हम पीले सिग्नल, फिर लाल सिग्नल और लाइनमैन के सम्भवतः कई सिग्नलों को नज़रअन्दाज़ करते हुए आगे निकल गये थे। लेकिन माल्सेव ने उन सिग्नलों को देखा क्यों नहीं?

"कोस्त्या," अलेक्सान्द्र वसील्येविच ने मुझे पुकारा। मैं उसके पास गया।

"कोस्त्या, हमारे सामने यह क्या चीज़ है?"

मैंने उसे बताया कि वह क्या चीज़ है।

"कोस्त्या, अब आगे तुम्हीं गाड़ी चलाओ। मैं अन्धा हो गया हूँ।"

अगले दिन मैं गाड़ी को लौटाकर अपने स्टेशन लाया और इंजन को डिपो ले गया, क्योंकि पहियों के हाल दो जगहों पर उतर गये थे। डिपो मैनेजर को इस घटना के बारे में रिपोर्ट देने के बाद मैंने माल्सेव का हाथ पकड़कर उसे घर तक पहुँचाया : बुरी तरह हताश होने की वजह से वह डिपो मैनेजर से नहीं मिलने गया।

घास से ढँकी सड़क पर स्थित अपने घर से थोड़ी दूर पहले ही उसने मुझे लौट जाने को कहा।

"यह ठीक नहीं है, मैं नहीं जा सकता, आप अन्धे हो गये हैं, अलेक्सान्द्र वसील्येविच।"

उसने साफ़ मननशील नज़रों से मुझे देखा —

"अब मैं देख सकता हूँ, तुम घर लौट जाओ। मैं एकदम देख सकता हूँ, वह मेरी बीवी मुझसे मिलने आ रही है।"

माल्सेव के घर के फाटक पर सचमुच एक औरत, अलेक्सान्द्र वसील्येविच की बीवी खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। उसके खुले काले बाल धूप में चमक रहे थे।

"क्या वह सिर पर कुछ बाँधे हुए है?" मैंने पूछा।

"नहीं तो," माल्सेव ने उत्तर दिया। "कौन अन्धा हो गया है — तुम या मैं?"

"अच्छा, यदि तुम देख सकते हो तो फिर ठीक है," मैंने कहा और लौट चला।

3

माल्सेव पर मुक़दमा चलाया गया और उसके मामले की जाँच शुरू हुई। जाँच-अधिकारी ने मुझे बुलाया और एक्सप्रेस गाड़ी में उस दिन घटी घटना के बारे में मेरी राय पूछी। मैंने वही उत्तर दिया जो मैं सोचता था यानी कि माल्सेव निर्दोष है।

"वह बिल्कुल पास में बिजली गिरने से अन्धा हो गया," मैंने उनसे कहा "उसे बिजली का झटका लगा और दृष्टि को नियंत्रित करनेवाली तंत्रिकाएँ क्षतिग्रस्त हो गयी। मुझे नहीं मालूम कि इस चीज़ को मैं ठीक-ठीक कैसे व्यक्त करूँ।"

"मैं आपकी बात समझता हूँ," जाँच-अधिकारी ने कहा। "आप इसे भली-भाँति बता रहे हैं। यह हो सकता है लेकिन इसका प्रमाण क्या है। आख़िरकार, स्वयं माल्सेव ने साक्ष्य दिया है कि उसने बिजली नहीं देखी।"

"पर मैंने और फ़ायरमैन ने भी इसे देखा।"

"इसका मतलब है कि बिजली माल्सेव के बजाय आपके अधिक निकट गिरी," जाँच-अधिकारी ने तर्क किया। "यदि ड्राइवर माल्सेव की दृष्टि-तंत्रिकाएँ क्षतिग्रस्त हो गयीं और वह अन्धा हो गया, तो फिर क्या वजह थी कि आपको और फ़ायरमैन को न तो बिजली का झटका लगा और न ही दृष्टि नष्ट हुई? क्या ख़्याल है आपका?"

इस सवाल ने मुझे चकरा दिया, और मैं गहरी सोच में डूब गया।

"माल्सेव बिजली को नहीं देख सका," मैंने कहा।

जाँच-अधिकारी ने मेरी बात को विस्मयपूर्वक सुना।

"वह उसे नहीं देख सका। बिजली के कौंधने से पहले विद्युतचुम्बकीय लहर चलती है और वह उससे तत्काल अन्धा हो गया। बिजली की कौंध विद्युत-विसर्जन का परिणाम है, न कि बिजली का कारण। जब तक बिजली चमकी, तब तक माल्सेव अन्धा हो चुका था। और अन्धा आदमी उसे कैसे देख सकता था।

"बहुत दिलचस्प बात है यह," जाँच-अधिकारी मुस्कराया।

"यदि माल्सेव अब भी अन्धा होता, तो मैं उसका मामला तुरन्त ख़ारिज कर देता। पर आप तो जानते ही हैं कि वह अब वैसे ही देख सकता है जैसे कि आप और मैं।

"जी हाँ, देख सकता है," मैंने सहमति प्रकट करते हुए कहा।

"क्या वह तब अन्धा हो चुका था जब वह इतनी तेज़ रफ़्तार से अपनी एक्सप्रेस

गाड़ी को मालगाड़ी की ओर ले जा रहा था?" जाँच-अधिकारी ने आगे पूछा।

"हाँ, वह अन्धा हो चुका था," मैंने कहा।

जाँच-अधिकारी ने मुझे बहुत गौर से देखा।

"तो उसने इंजन को आपको सँभालने के लिए क्यों नहीं दिया या कम से कम आपसे गाड़ी रोकने के लिए क्यों नहीं कहा?"

"पता नहीं," मैंने कहा।

"यही तो बात है," जाँच-अधिकारी ने कहा। "एक्सप्रेस गाड़ी के ड्राइवर के रूप में एक वयस्क और समझदार आदमी एक्सप्रेस गाड़ी को चला रहा है, हजारों लोगों को मौत के मुँह में लिये जा रहा है, दुर्घटना मात्र संयोगवश बच जाती है और बाद में वह यह सफ़ाई देकर दोष-मुक्त होना चाहता है कि वह उस समय अन्धा हो गया था। इसके बारे में आपका क्या ख़्याल है?"

"लेकिन वह स्वयं भी तो मारा जाता!" मैंने कहा।

"शायद, मारा जाता। लेकिन मुझे हज़ारों लोगों के जीवन में दिलचस्पी है न कि एक आदमी के। हो सकता है कि वह अपने कारणों से मरना चाहता हो।"

"नहीं, ऐसे कोई कारण नहीं थे," मैंने कहा।

जाँच-अधिकारी की दिलचस्पी जाती रही : वह मुझसे ऐसे ऊब गया था जैसे किसी मूर्ख से।

"आपको मुख्य बात के सिवास सब कुछ मालूम है," उसने धीरे-धीरे और विचारपूर्वक कहा, "आप जा सकते हैं।"

मैं जाँच-अधिकारी के पास से सीधे माल्त्सेव के घर गया।

"अलेक्सान्द्र वसील्येविच, जब आप अन्धे हुए तो मुझे अपनी मदद के लिए क्यों नहीं बुलाया?" मैंने माल्त्सेव से पूछा।

"लेकिन मुझे तो दिखायी दे रहा था," माल्त्सेव ने उत्तर दिया। "तुम्हारी मदद की मुझे क्या ज़रूरत थी?"

"क्या आपको दिखायी दे रहा था?"

"सब कुछ दिखायी दे रहा था – पटरी, सिग्नल, स्तेपी के गेहूँ, दायाँ इंजन – मैं सब कुछ देख रहा था।"

मैं चकरा गया।

"तो फिर यह कैसे हो गया? आप एक के बाद एक सभी सिग्नलों को नज़रअन्दाज़ करते हुए सीधे दूसरी गाड़ी के पीछे टक्कर मारने "

प्रथम श्रेणी के भूतपूर्व ड्राइवर ने दुःखपूर्वक क्षण भर के लिए सोचा और फिर मुझे धीरे-धीरे मानो अपने से ही बात करते हुए उत्तर दिया –

"मैं रोशनी देखने का अभ्यस्त हो गया था और मैंने सोचा कि अब भी उसे देख रहा हूँ, लेकिन जो कुछ भी मैंने देखा, वह केवल अपने दिमाग, अपनी कल्पना में देखा। मैं सचमुच अन्धा हो गया था, लेकिन यह मुझे मालूम नहीं था; यहाँ तक कि मुझे जोड़पट्टियों के बारे में भी विश्वास नहीं हुआ, भले ही मैंने उन्हें सुना – मैंने सोचा कि मुझसे भूल हो गयी है। और जब तुमने रोकने की सीटी दी तथा मुझे पुकारा तो मुझे हरी बत्ती ही दिखायी दे रही थी। मैं तुरन्त ही यह समझ न पाया कि क्या हुआ है।"

अब जाकर मैं माल्त्सेव को समझा, लेकिन पता नहीं क्यों उसने जाँच-अधिकारी से यह नहीं बताया कि अन्धा होने से काफ़ी देर बाद भी वह अपनी कल्पना में सब कुछ ज्यों का त्यों देखता जा रहा था और इस तरह देखी गयी चीजों को सच मान रहा था। मैंने इसके बारे में अलेक्सान्द्र वसील्येविच से पूछा।

"लेकिन मैंने तो उसे सब कुछ बता दिया था," माल्त्सेव ने उत्तर दिया।

"और जाँच-अधिकारी ने क्या कहा?"

"'यह सब कुछ आपकी कल्पना थी', उसने कहा। 'मुझे मालूम नहीं, शायद अब भी आप मन में कुछ गढ़ रहे हों। लेकिन मुझे तो सही-सही तथ्यों को निचित करना है, न कि आपकी काल्पनिक बातों को। मैं यह साबित नहीं कर सकता कि आपकी कल्पना में क्या-क्या घटा। यह सब कुछ आपके दिमाग में घटा – ये आपके शब्द है। लेकिन दुर्घटना, जो होते-होते बची, एक तथ्य है।'"

"वह बिल्कुल सही है," मैंने कहा।

"मैं ख़ुद जानता हूँ कि वह सही है," ड्राइवर ने सहमति प्रकट करते हुए कहा। "लेकिन मैं भी सही हूँ, मैं निर्दोष हूँ।"

"तो अब क्या होगा?"

मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि माल्त्सेव को इसका क्या उत्तर दूँ।

4

माल्त्सेव को जेल भेज दिया गया। मैं एक और ड्राइवर के साथ सहायक के रूप में काम करता रहा। वह एक प्रौढ़ उम्र का अति सतर्क ड्राइवर था, जो पीली बत्ती के एक किलोमीटर पहले से ही ब्रेक लगाना शुरू कर देता था और जब तक हम उसके पास पहुँचते, तब तक हरी बत्ती का सिग्नल मिल चुका होता था और वह फिर गाड़ी को आगे घसीटने लगता था। भला यह भी कोई काम था और मुझे बरबस माल्त्सेव की याद आ जाती थी।

अगले जाड़े में मैं प्रादेशिक केन्द्र गया हुआ था। वहाँ मैं अपने भाई से मिलने

गया, जो विश्वविद्यालय के छात्रावास में रह रहा था। जब हम बातचीत कर रहे थे, तो उसने प्रसंगवश मुझसे कहा कि विश्वविद्यालय की भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला में कृत्रिम बिजली पैदा करने के लिए एक टेस्ला कुण्डली है। इससे मेरे मन में एक युक्ति सूझी, हालाँकि यह अभी खुद मुझे भी स्पष्ट नहीं थी।

जब मैं घर लौटा, तो उस युक्ति के बारे में बार-बार सोचता रहा और आख़िरकार तय किया कि मेरी युक्ति सही है। मैंने माल्त्सेव के मामले की तहक़ीकात करनेवाले जाँच-अधिकारी को इस निवेदन के साथ एक पत्र लिखा कि विद्युत-विसर्जनों की क्रिया के प्रति क़ैदी माल्त्सेव की संवेदनशीलता की जाँच की जाये। यदि माल्त्सेव की मनःस्थिति या दृष्टि-अवयव आकस्मिक, निकटवर्ती विद्युत-विसर्जनों की क्रिया के प्रति विशेष संवेदनशील पाये जायेंगे, तो उसके मामले को फिर से देखना पड़ेगा। मैंने जाँच-अधिकारी को अपने पत्र में बताया कि टेस्ला कुण्डली कहाँ उपलब्ध है और आदमी पर उसका प्रयोग कैसे किया जाना चाहिए।

जाँच-अधिकारी ने लम्बे अर्से तक मुझे कोई जवाब नहीं दिया, लेकिन बाद में मुझे सूचित किया कि प्रादेशिक अभियोजक विश्वविद्यालय की भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला में परीक्षण करने के मेरे सुझाव को मान गये हैं।

कुछ दिन बाद ही मुझे जाँच-अधिकारी का सम्मन मिला। मैं उत्तेजित और बिल्कुल आवस्त होकर पहुँचा कि माल्त्सेव का मामला अन्ततः सफलतापूर्वक निपट जायेगा।

अभिवादनों के आदान-प्रदान के बाद जाँच-अधिकारी ने लम्बी चुप्पी साध ली। वह अपनी उदास आँखों से एक काग़ज़ को धीरे-धीरे पढ़ता रहा, मेरा दिल बैठ गया।

"आपने अपने मित्र का अहित किया है," उसने अन्त में कहा।

"क्या मतलब? क्या उसकी सज़ा बरक़रार रहेगी?"

"नहीं, हमने माल्त्सेव को रिहा कर दिया है। आदेश जारी किया जा चुका है। शायद अब तक वह अपने घर भी पहुँच गया हो।"

"बहुत-बहुत शुक्रिया," मैंने जाँच-अधिकारी के सामने खड़ा होते हुए कहा।

"लेकिन हम आपको धन्यवाद नहीं देंगे। आपने बुरी सलाह दी थी। माल्त्सेव फिर से अन्धा हो गया है!"

मैं सहसा निढाल होकर बैठ गया। मेरा सारा उत्साह जाता रहा और गला सूख गया।

"विशेषज्ञों ने माल्त्सेव पर अन्धकार में टेस्ला कुण्डली के अन्तर्गत बिना किसी चेतावनी के परीक्षण किया," जाँच-अधिकारी ने मुझे बताया। "स्विच दबा दिया गया बिजली पैदा हुई और तीव्र कौंध छूटी। माल्त्सेव बिल्कुल शाँत रहा, लेकिन अब वह फिर नहीं देख सकेगा – यह आधिकारिक डॉक्टरी जाँच द्वारा तय पाया गया है।"

जाँच-अधिकारी ने दो-एक घूँट पानी पिया और आगे कहने लगा –

"अब वह दुनिया को फिर सिर्फ़ अपनी कल्पना में ही देख सकता है। आप उसके दोस्त हैं, उसकी मदद कीजिये।"

"शायद उसकी आँखों की रोशनी फिर लौट आये," मैंने आशाजनक ढंग से कहा," वैसे ही जैसे उस दुर्घटना के बाद लौट आयी थी "

जाँच-अधिकारी ने कुछ सोचा।

"मुझे सन्देह है। वह पहली चोट थी और अब उसी जगह पर एक और चोट लग गयी है।"

अपनी बेचैनी पर क़ाबू न पाकर जाँच-अधिकारी उठ खड़ा हुआ और व्यग्रतापूर्वक कमरे में इधर-उधर टहलने लगा।

"इसमें मेरा ही दोष है! क्यों मैंने आपके सुझाव पर ध्यान दिया और बेवक़ूफ़ी में उसकी जाँच कराने पर अड़ा रहा! मैंने आदमी के जीवन के साथ ख़तरा उठाया और वह उसे ख़तरे को नहीं झेल पाया।"

"इसमें आपका दोष नहीं है। आप किसी भी चीज़ के साथ ख़तरा नहीं उठा रहे थे," मैंने उन्हें आश्वस्त किया।" ज़रा बताइये न कि एक अन्धा, मगर स्वतंत्र आदमी बेहतर है या कि अपनी सही-सलामत आँखों के साथ अन्यायपूर्ण ढंग से जेल की सजष काटनेवाला?"

"मुझे नहीं मालूम था कि आदमी की निर्दोषता सिद्ध करने के लिए मुझे उसे ऐसे दुर्भाग्य का शिकार बनाना पड़ेगा," जाँच-अधिकारी ने कहा। "यह क्षति अपूरणीय है।"

"आप जाँच-अधिकारी हैं," मैंने स्थिति को सपट करते हुए कहा। "आपको सम्बद्ध व्यक्ति के बारे में सब जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है – ऐसी जानकारी भी, जो स्वयं उस आदमी को भी नहीं मालूम होती।"

"मैं आपकी बात समझता हूँ, आप ठीक कहते हैं," जाँच-अधिकारी ने धीरे-से कहा।

"आप परेशान मत होइये, साथी जाँच-अधिकारी। सही तथ्य तो आदमी के अन्दर थे और आप उनकी तलाश कहीं बाहर कर रहे थे। लेकिन आपको अपनी ग़लती महसूस हुई और आपने माल्त्सेव के प्रति उदारतापूर्वक व्यवहार किया। मैं आपका सम्मान करता हूँ।"

"और मैं भी आपका सम्मान करता हूँ," जाँच-अधिकारी ने कहा। "आप जाँच-अधिकारी का एक अच्छा सहायक सिद्ध हो सकते हैं ।"

इसके बाद मैं वहाँ से चल दिया। मैं माल्त्सेव का दोस्त नहीं था और न ही

उसने कभी मुझमें किसी तरह की कोई दिलचस्पी ली थी। फिर भी मैं भाग्य की इस निष्ठुरता से उसकी रक्षा करना चाहता था। मेरे मन में निर्वात की उन शक्तियों के प्रति कटु द्वेष जाग उठा, जो आदमी को यों ही इतने उपेक्षाभाव से नष्ट कर डालती हैं। मैंने इस बात में एक गुप्त, गूढ़ उद्देय महसूस किया कि इन शक्तियों ने, उदाहरणार्थ, मेरी जगह माल्त्सेव को नष्ट कर डाला है। मुझे मालूम था कि प्रकृति में मानवीय, गणितीय दृटि से ऐसे उद्देय का कोई अस्तित्व नहीं होता है। लेकिन यह तो मैं बिल्कुल साफ़-साफ़ देख रहा था कि ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जो मानव-जीवन पर विनाश ढानेवाली विद्वेषपूर्ण परिस्थितियों के अस्तित्व को सिद्ध करती हैं, और कि ये विनाशकारी शक्तियाँ गिने-चुने और उदात्त लोगों को ही अपना शिकार बनाती हैं। मैंने न झुकने का निश्चय किया, क्योंकि मुझे अपने अन्तरतम में किसी ऐसी चीज़ का अनुभव हुआ, जो प्रकृति की बाह्य शक्तियों या हमारी नियति में नहीं मिल सकती – वह थी मेरा मूल मानवीय सत्त्व। इसने मुझे रोष से भर दिया और संघर्ष करने का संकल्प प्रदान किया, भले ही मुझे यह मालूम नहीं था कि इसे कैसे करूँ।

5

अगली गर्मी में मैंने इंजन ड्राइवर की परीक्षा पास की और शटल गाड़ी का "सऊ" इंजन चलाने लगा। लगभग जब भी मैं इंजन को डिब्बों से जोड़ने के लिए स्टोन प्लेटफ़ार्म पर लाता था, माल्त्सेव को एक रंगीन बेंच पर बैठे हुए पाता था। घुटनों के बीच रखी छड़ी की मूठ पर अपना हाथ टेके वह भावनाशून्य, अन्धी आँखों के साथ अपने व्यग्र, संवेदनशील चेहरे को इंजन की ओर मोड़ लेता था, जलते स्नेहक तेल की गन्ध-भरी हवा में साँस खींचने लगता था तथा इंजन के पिस्टनों के लयात्मक कार्य को कान लगाकर सुनने लगता था। मेरे पास उसके व्यथित मन को शान्त करने का कोई चारा नहीं था और उसे वहीं बैठे छोड़ कर मैं अपने दौरे पर निकल पड़ता था।

गर्मी बीतती गयी, मैं इंजन पर काम करता रहा। मैं अलेक्सान्द्र वसील्येविच को प्रायः केवल प्लेटफार्म पर ही नहीं देखता था, बल्कि सड़क पर भी छड़ी खटखटाकर टोह लेते हुए धीरे-धीरे आते-जाते हुए मेरी उससे मुलाक़ात हो जाती थी। वह मरियल-सा हो गया था। जहाँ तक पैसे का सम्बन्ध था, बुरी दशा में नहीं था, क्योंकि उसे पेंशन मिलती थी, बीवी काम करती थी और उनके कोई बच्चा नहीं था। कभी-कभार मैं उससे बातचीत करता था, लेकिन मेरी शिष्ट बातों और इस साँत्वना से उसे कष्ट ही पहुँचता था कि अन्धा आदमी भी औरों की तरह ही अपनी मानसिक क्षमताओं से सम्पन्न एक पूर्ण आदमी होता है।

"जाओ, जाओ," वह मेरे इन सद्भावनापूर्ण शब्दों को सुनकर कहता था।

पर मैं भी कोई कम तुनकमिज़ाज नहीं था और एक दिन जब उसने रोज़-रोज़ की तरह मुझे "जाने" को कहा, तो मैं उससे बोला –

"मैं कल साढ़े दस बजे दौरे पर जा रहा हूँ। यदि तुम चुपचाप बैठने का वादा करो, तो मैं तुम्हें केबिन में लेकर चलूँगा।"

माल्त्सेव राज़ी हो गया।

"ठीक है, मैं अपने आपे में ही रहूँगा। वहाँ मेरे हाथ में कोई चीज़ – रिवर्स – पकड़ा देना, मैं उसे इधर-उधर बिल्कुल नहीं मोड़ूँगा।"

"ज़रूर तुम इसे इधर-उधर नहीं मोड़ोगे," मैंने पुष्टि की। "यदि तुम मोड़ोगे, तो तुम्हारे हाथ में कोयला पकड़ा दूँगा और इसके बाद फिर तुम्हें कभी अपने साथ इंजन में नहीं बैठाऊँगा।"

अन्धे आदमी ने कुछ नहीं कहा। वह इंजन के कैबिन में बैठने को इतना आतुर था कि मैं जो कहूँ मानने को तैयार था।

अगले दिन मैंने उसे आवाज़ देकर उस रंगीन बेंच से बुलाया और उसे कैबिन में चढ़ने में सहायता देने के लिए नीचे उतर आया।

जब मैं गाड़ी लेकर स्टेशन से बाहर निकल आया, तो मैंने माल्त्सेव को ड्राइवर की सीट पर बैठा दिया, उसके एक हाथ को रिवर्स पर और दूसरे को ऑटोमेटिक ब्रेक पर रख दिया तथा अपने हाथों को उसके हाथों पर रख दिया। मैं अपने हाथों से ही गाड़ी चला रहा था, लेकिन नीचे उसके हाथ भी मेरे हाथों के साथ-साथ काम कर रहे थे। माल्त्सेव मेरी हिदायतों को सुनते हुए चुपचाप बैठा हुआ था, उसने द्रुत गति से दौड़ते इंजन की गति, चेहरे पर हवा के झोंकों और कार्य को मन ही मन महसूस किया। वह अपने दुःख को भुलकर मंत्रमुग्ध-सा बैठा रहा और इस दुबले-पतले आदमी का चेहरा, जिसके लिए इंजन का स्पर्श ही सबसे बड़ी ख़ुशी थी, आन्तरिक हर्ष से चमक उठा।

हम उसी रास्ते से वापस लौट रहे थे। माल्त्सेव ड्राइवर की सीट पर बैठा हुआ था और मैं उसके ऊपर झुका, उसके हाथों पर अपने हाथ रखे हुए था। तब तक उसने कार्य की लय से इतने सुव्यवस्थित ढंग से ताल-मेल बैठा लिया था कि उसके हाथों को हल्के-से दबाते ही वह भाँप लेता था कि मैं क्या चाहता हूँ। पहले का निपुण ड्राइवर अपने अन्धेपन पर विजय पाने तथा दुनिया को अन्य साधनों से महसूस करने का प्रयास कर रहा था, ताकि वह काम कर सके, अपने जीवन का औचित्य सिद्ध कर सके।

हल्के विस्तारों पर मैं उसके पास से बिल्कुल हट जाता था और सहायक की

सीट से सामने पटरी को देखने लगता था।

हम तोलुबेयेव के निकट आ गये थे। हमारा दौरा पूरा होने ही वाला था और हम समय से चल रहे थे। लेकिन अन्तिम विस्तार पर एक पीली बत्ती दिखायी दी। मैं रफ़्तार को इतना पहले कम नहीं करना चाहता था और इंजन को खुली भाप के साथ चला रहा था। माल्त्सेव अपने हाथ को रिवर्स पर रखे चुपचाप बैठा था। मैंने अपने उस्ताद को गुप्त प्रत्याशा से देखा।

"भाप को बन्द कर दो!" उसने मुझसे कहा।

मैं चुपचाप था, मेरा दिल तेज़ी से धड़क रहा था।

तभी माल्त्सेव उठा, उसने अपना हाथ रेगुलेटर की ओर बढ़ाया और भाप को बन्द कर दिया।

"मुझे पीली बत्ती दिखायी दे रही है," उसने कहा और ब्रेक लीवर को अपनी ओर खींचा।

"शायद तुम फिर यह सब कुछ कल्पना में देख रहे हो," मैंने उससे पूछा।

उसने अपना चेहरा मेरी ओर किया और फूट-फूटकर रोने लगा। मैं उसके पास चला गया और उसे चूम लिया।

"गाड़ी को डिपो तक ले चलो, अलेक्सान्द्र वसील्येविच। अब तुम सारी दुनिया देख सकते हो!"

वह गाड़ी को स्वयं बिना मेरी सहायता के तोलुबेयेव डिपो ले गया। काम के बाद मैं उसके साथ ही उसके घर गया। हम शाम और पूरी रात साथ-साथ बैठे रहे। मैं उसे अकेले छोड़ने से वैसे ही डर रहा था जैसे कि इस भीषण, भव्य दुनिया की आकस्मिक, द्वेषपूर्ण शक्तियों से अरक्षित अपने प्यारे बेटे को।

1941